Samaj Vigyan Shodh Patrika

Vol. 2 No. XXXX (2017-18)
ISSN 0973-7626
RNI: UPBIL/2005/16107
OCTOBER 2017 - MARCH 2018

एटा जनपद में हीनताजन्य रोग : कारण एवं निवारण

डॉ. चन्द्रभान सिंह
सहायक प्रोफेसर- भूगोल विभाग
देवता महाविद्यालय, मोरना, बिजनौर।

'एटा' जनपद मुख्यालय के रूप में सर्वप्रथम सन् 1852 ई. में अस्तित्व में आया। प्रारम्भ में इसके अन्तर्गत एटा, कासगंज, अलीगंज व जलेसर- कुल चार तहसीलें ही कार्य कर रही थीं। वर्ष 1984 में पांचवीं तहसील पटियाली की गयी। तभी से एटा जनपद के अन्तर्गत पांच तहसीलें कार्यरत हैं। लेकिन 15 अप्रैल, 2008 को कासगंज व पटियाली दो तहसीलों को अलग करके '**काशीराम नगर**' नामक एक नये जनपद का गठन किया गया, जो उत्तर प्रदेश के 72वें जनपद के रूप में अस्तित्व में आया। इसके बाद शेष तीन तहसीलें- एटा, अलीगंज व जलेसर से मिलकर एटा जनपद का पुनर्गठन हुआ है।

एटा जनपद उत्तर प्रदेश के आगरा मण्डल में गंगा-यमुना जैसी पवित्र नदियों के मध्य 2452.92 वर्ग किमी. क्षेत्रफल में विस्तृत है। यह जनपद 27^0 18' से 27^0 57' उत्तरी अक्षांशों तथा 78^0 11' से 79^0 17' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। जनपद मुख्यालय एटा हाइवे नं.-91 जी.टी. रोड पर अवस्थित है। जनपद एटा की पूरब-पश्चिम लम्बाई 125 किमी. तथा उत्तर से दक्षिण इसकी चौड़ाई 63 किमी. है। जनपद एटा आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से प्रदेश का एक पिछड़ा जनपद है। यह हीनतजन्य रोगों से ग्रस्त है।

कुपोषण से उत्पन्न रोगों को हीनताजन्य रोग की संज्ञा दी जाती है। हमारे देश के अधिकांश रोगियों की बीमारी किसी न किसी रूप में पोषणाहार से सम्बन्धित है। एटा जनपद इसका कोई अपवाद नहीं है। इटनरनेशनल कालेज ऑफ न्यूट्रिशन के अनुसार "हृदय गति रुकना, रक्तचाप, मधुमेह और स्ट्रोक" जैसे रोगों को भी फल व सब्जी आदि पौष्टिक पदार्थों के प्रयोग से न केवल रोका जा सकता है, बल्कि उनका उपचार भी किया जा

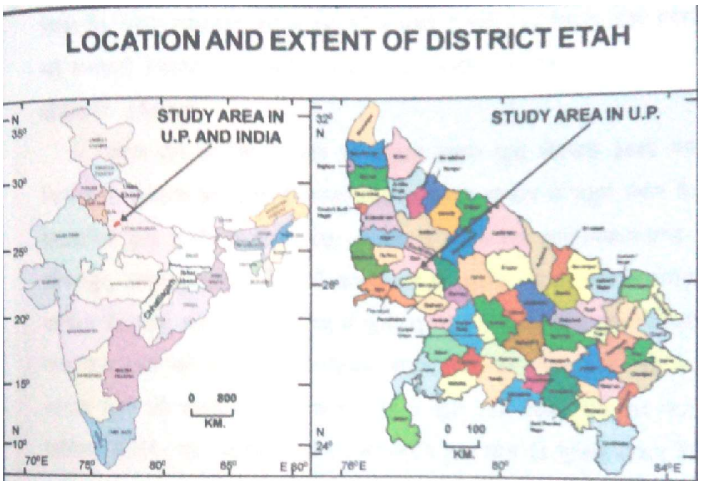

सकता है, क्योंकि इनमें पोटेशियम, मैग्नेशियम, फाइबर (रेशा) लिनोनिक एसिड च वेजिटेबल प्रोटीन आदि महत्वपूर्ण तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः प्रत्येक प्रकार के रोग की उत्पत्ति व वृद्धि का आहार से थोड़ा बहुत सम्बन्ध अवश्य होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कम भोजन करने अथवा भोजन के ठीक प्रकार से पाचन क्रिया न होने, अत्यधिक मात्रा में शरीर से जल निष्कासित हो जाने आदि कारणों से भी हीनताजन्य रोग उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु प्रस्तुत शोध अध्ययन में केवल पोषण तत्वों के अभाव से हीनताजन्य रोगों पर विचार किया गया है।

इस जनपद के मनुष्यों के आहार स्वभाव के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनके भोजन में प्रोटीन, वसा, कैल्शियम, थायमीन व राइबोफ्लोबिन की मात्रा आवश्यकता से कम होती है। इसी कारण इस जनपद में प्रोटीन, वसा, कैल्शियम, थायमीन व राइबोफ्लोबिन कुपोषण से प्रसूत हीनताजन्य रोग अधिक देखने को मिलते हें। प्रस्तुत अध्ययन में एटा जनपद में पाये जाने वाले मुख्य-मुख्य रोगों का वर्णन किया गया है। इस अध्ययन में दो मुख्य दोष हैं, जिनकी ओर संकेत करना आवश्यक है। प्रथम- यह अध्ययन मूलतः इस एटा जनपद में स्थित प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित है। अतः निजी चिकित्सकों से उपचार कराने वाले रोगियों को इस अध्ययन में शामिल नहीं किया जा सकता। द्वितीय- इस क्षेत्र में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों व परिवार नियोजन केन्द्रों की सीमित संख्या होने के कारण रोगों की सांद्रता, कोटिक्रम व उग्रता आदि के क्षेत्रीय वितरण को समझाने के लिए विकासखण्ड से छोटी क्षेत्रीय ईकाई को नहीं चुना जा सकता है। अध्ययन को यथासमय शुद्ध बनाने के उद्देश्य से शोधकर्ता ने स्थानीय चिकित्सकों की मदद से प्रतिदर्श ग्रामों के हीनताजन्य रोगों के प्रकार व उनसे पीड़ित मनुष्यों की संख्या ज्ञात करने का प्रयास किया है। जिससे सम्बन्धित विकासखण्डों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों की समीक्षा की जा सके।

जनपद के हीनताजन्य रोग-

एटा जनपद में मिलने वाले हीनताजन्य रोगों को निम्न प्रकार वर्णित किया जाता है-

(1) प्रोटीन हीनताजन्य रोग-

(i) प्रोटीन कैलोरी कुपोषण

(ii) क्वाशिआरकार

(iii) सूखा रोग

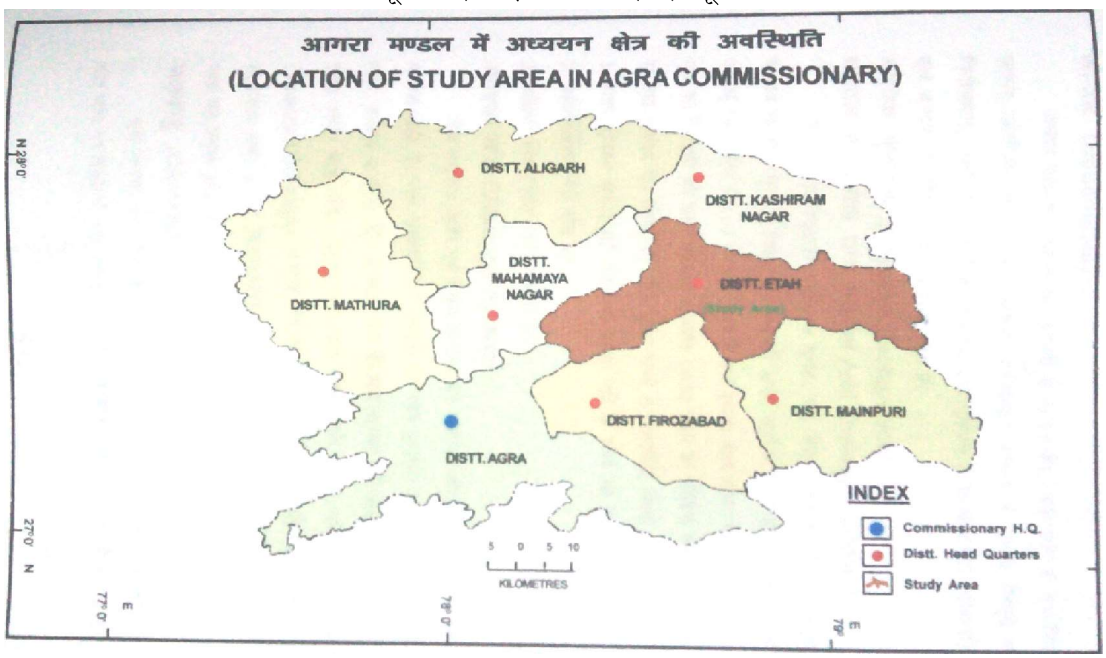

(2) विटामिन हीनताजन्य रोग-

(i) विटामिन 'ए' की कमी से उत्पन्न रोग: प्रथम- नेत्र शुष्कता, एवं द्वितीय- रतौंधी।

(ii) विटामिन 'सी' की कमी से उत्पन्न रोग।

(iii) विटामिन 'डी' की कमी से उत्पन्न रोग : आस्टिमेलशिया।

(3) खनिज हीनताजन्य रोग : आयरन की कमी से उत्पन्न रोग- रक्ताल्पता

(4) अन्य हीनताजन्य रोग

(i) अतिसार

(ii) पथरी

(iii) मधुमेह

(1) प्रोटीन हीनताजन्य रोग के कारण एवं निवारण :

इस जनपद में प्रोटीन की कमी से निम्नलिखित रोग होते हैं-

(i) प्रोटीन कैलोरी कुपोषण-

प्रोटीन कैलोरी कुपोषण दो कारणों से हो सकता है : प्रथम- अज्ञानता अथवा दरिद्रता के कारण मात्रा एवं प्रकार की दृष्टि से पर्याप्त भोजन का प्राप्त न होना, तथा द्वितीय- खूनी पेचिश, श्वांस सम्बन्धी रोग एवं अन्तड़ियों में कीड़े होना आदि कारकों से भी शरीर में प्रोटीन की कमी हो सकती है।

इस जनपद में अनेक पटवार क्षेत्रों में प्रोटीन कैलोरी कुपोषण एक गम्भीर स्वास्थ्य समस्या है। सामान्यत: कुपोषण शिशुओं में व 1-3 वर्ष की उम्र के बच्चों के आहार में अधिक पाया जाता है। इन कुपोषण जनित रोगों से न केवल अल्प आयु में मृत्यु हो जाती है, अपितु जो बच्चे इस बीमारी के बाद जीवित रहते हैं। उनका शरीर दर्बल हो जाता है तथा उनमें अपेक्षित मानसिक विकास नहीं हो पाता। जनपद एटा में वर्ष 2015 में कुल हीनताजन्य रोगियों की संख्या का 6.3 प्रतिशत भाग प्रोटीन-कैलोरी कुपोषण से ग्रसित था।

निदान- इस समस्या के निदान के लिए सबसे आवश्यक है, लोगों को पोषण ज्ञान की जानकारी देना। क्योंकि इस ज्ञान के द्वारा वे कम धन में भी पौष्टिक आहार प्राप्त कर सकते हैं। इसके निदान के लिए मुख्य रूप से अण्डे की सफेदी, मीट, दूध, मटर, दाल एवं सेम आदि का सेवन करना चाहिये।

इसके साथ ही इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए हमें मानसिकता बदलनी होगी। समाज के सोचने के ढंग में परिवर्तन लाना होगा, जैसे- बालक के लिए माँ का दूध आवश्यक है, पर दूध पिलाने वाली माँ के भोजन में अतिरिक्त पौष्टिक तत्वों का समावेश उतना ही आवश्यक है। बच्चे को माँ के दूध के अतिरिक्त अन्य भोज्य पदार्थ भी आवश्यक हैं, जो माँ के दूध के साथ मिलने चाहिए।

(ii) क्वाशिआरकार-

यह रोग सामान्यत: उन बच्चों में अधिक मात्रा में होता है, जिन्हें अपने आहार से कैलोरी और प्रोटीन दोनों बहुत कम मात्रा में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त शिशुओं व बच्चों में खसरा, काली खांसी, मलेरिया जैसे रोगों के दौरान अथवा उसके पश्चात् भी यह रोग हो सकता है।

क्वाशिआरकार के फलस्वरूप ईडीमा, शारीरिक वृद्धि का मन्द पड़ना, मांसपेशियों का क्षय, मानसिक परिवर्तन, बालों के रंग में परिवर्तन, त्वचा रोग, रक्ताल्पता तथा विटामिन 'ए', 'बी' की कमी हो जाती है।

जनपद एटा में क्वाशिआरकार रोग से पीड़ित

सारिणी-1

जनपद एटा में प्रोटीन हीनताजन्य रोग से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या (वर्ष २००९ - २०१५)

रोग का नाम	2009	2010	2011	2012	2013	2014	2015
प्रोटीन कैलोरी कुपोषण	131	201	79	179	384	234	400
क्वाशिआरकार	08	23	18	22	26	22	29
सूखा रोग	25	281	300	362	391	429	424

स्रोत : स्वास्थ्य परिवार कल्याण मंत्रालय, महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता का मेनुअल, भारत सरकार।

व्यक्तियों की संख्या को सारणी-1 में प्रदर्शित किया गया है।

निदान- इस बीमारी में भोजन में सुधार कर नियन्त्रण किया जा सकता है। इस बीमारी में बच्चों को अपजन के कारण भूख ठीक से नहीं लगती, इसलिए प्रोटीन की कमी होने लगती है। प्रोटीन की कमी को दूर करना आवश्यक है।

सबसे वहले बच्चे को वसा रहित दूध देना चाहिये। बच्चे को करीब 3-4 हफ्ते तक ऐसा भोजन दिया जाये जिसमें वसा न हो, ताकि उसकी पाचन क्रिया ठीक हो जाये। इसलिये उसे वसा रहित दूध, दाल का सूप, दलिया, पका केला दूध में मसलकर देना चाहिये।

(iii) सूखा रोग

इस रोग के फलस्वरूप बच्चों का शरीर सूखने लगता है, मांस पोशियाँ क्षय होने लगती हैं। शारीरिक विकास रुक जाता है तथा उनका शरीर मात्र त्वचा व अस्थियों का ढांचा-सा हो जाता है। इसी कारणवश सूखा रोग से बच्चे अत्यधिक दुर्बल हो जाते हैं।

यह रोग न केवल बच्चों में, अपितु प्रोटीन, कैलोरी, कुपोषण से प्रभावित किसी भी आयु के मनुष्यों में हो सकता है। कुपोषण के अलावा तपेदिक, अन्तड़ियों की सूजन आदि के फलस्वरूप भी सूखा रोग पनप सकता है।

निदान- सूखा रोग का उपचार भोजन के द्वारा सम्भव हो कसता है- (1) तरल रूप में सुपाच्य होना चाहिये। (2) भोजन में प्रोटीन तथा कैलोरी उचित मात्रा में होने चाहिए। (3) भोजन में लौह, लवण व विटामिन युक्त भोज्य पदार्थ होने चाहिए। (4) भोजन में रेशे युक्त भोज्य पदार्थ होने चाहये। (5) बच्चों के भोजन में नमक की मात्रा कम होनी चाहिये।

वसा रहित दूध, दाल का सूप, दलिया, अनाज, चीनी, केला, अन्य मीठे फल, लौह लवण, कैल्शियम, हरी पत्तेदार सब्जी आदि के सेवन से इस रोग को रोका जा सकता है। फलों का चुनाव करते समय ध्यान रहे कि सेल्यूलोस की मात्रा फलों में कम हो।

(2) विटामिन हीनताजन्य रोग के कारण एवं निवारण :

(i) विटामिन 'ए' की कमी से उत्पन्न रोग-

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस जनपद में विटामिन 'ए' की प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन औसत प्राप्ति आवश्यकता से अधिक है। परन्तु जनपद के भिन्न-भिन्न भागों में ऐसे अनेक परिवार हैं, जिनके सदस्यों को अपने भोजन से आवश्यकता के अनुरूप विटामिन 'ए' प्राप्त नहीं होता। सामान्यतः ये वे परिवार हैं, जो निर्धनता के कारण दुग्ध, फल व मक्खन आदि नहीं खा पाते हैं। इन्हीं परिवारों में विटामिन 'ए' की कमी से उत्पन्न रोग अधिक मिलते हैं। इस जनपद में विटामिन 'ए' की कमी के कारण निम्नलिखित रोग अधिक पाये जाते हैं-

(I) रतौंधी-

इस रोग के कारण आँख के कार्य में बाधा उत्पन्न हो जाती है। रतौंधी के रोगी को मन्द प्रकाश में कम दिखाई देता है तथा रात्रि के समय तो लिखने, पढ़ने या अन्य कार्य करने में अत्यन्त कठिनाई होती है। यह रोग अपेक्षाकृत कम आयु में उत्पनन हो जाता है। इस प्रकार के रोगी को अपनी आँखों के सामने तारे के गुच्छे से घूमते दिखाई देते हैं।

निदान- इस रोग के उपचार के लिए विटामिन 'ए' से युक्त पदार्थों का सेवन करना आवश्यक होता है। विटामिन 'ए' की पूर्ति के लिए मक्खन, दूध, अण्डे की जर्दी, मछली, गाजर, आम, पतीता एवं सन्तरा आदि का सेवन करना चाहिये।

(II) नेत्र शुष्कता-

नेत्रशुष्कता का शब्दिक अर्थ सूखी आँख से होता है। यह आँख की एक खतरनाक बीमारी है तथा प्रायः विटामिन 'ए' की कमी से उत्पन्न होती है। नेत्र शुष्कता में आँखों में लालिमा उत्पन्न हो जाती है तथा नेत्रगोलक असाधारण रूप में सूखे और चमकहीन बन जाते हैं। जनपद एटा में यह रोग विस्तृत रूप से फैला हुआ है।

निदान- विटामिन 'ए' को रेटीनॉल भी कहते हैं, क्योंकि आत्रखों की रैटीना में विटामिन 'ए' का ऑक्सीकरण होता है, जिससे विटामिन 'ए' एल्डीहाइड में बदल कर आँखों को देखने की शक्ति प्रदान करता है। इस रोग

से बचने के लिए विटामिन 'ए' से युक्त पोषक तत्वों का सेवन करना जरूरी है। जैसे- अण्डा, मक्खन, दूध, मछलियों के तेल, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, गाजर, आम, पपीता, सन्तरा आदि का उपयारेग करना चाहिये।

(ii) विटामिन 'सी' की कमी से उत्पन्न रोग-

विटामिन 'सी' की कमी से उत्पन्न रोगों में दांतों के रोग विशेष उल्लेखनीय हैं। विठामिन 'सी' की कमी से दांतों और मसूड़ों के अनेक रोग हो जाते हैं। जिसमें मसूड़े फूलना, मस्तिष्क की कमजोरी तथा शरीर में थकान आदि होने लगती है।

निदान- विटामिन 'सी' की कमी से उत्पन्न रोगों से बचने के लिए सन्तरा, नींबू, टमाटर, अंगूर, आँवला तथा हरी सब्जियों का सेवन करना चाहिए। अंकुरित दालों में यह पर्याप्त मात्रा में होता है। इसके सेवन से भी विटामिन 'सी' की कमी पूरी होती है। इनका कार्य रक्त की शुद्धता, अस्थियों तथा दांतों के निर्माण तथा वृद्धि में सहायता एवं मस्तिष्क का पोषण आदि है।

सारिणी-2

एटा जनपद में विटामिन हीनताजन्य रोगों से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या (वर्ष 2009 - 2015)

रोग का नाम		2009	2010	2011	2012	2013	2014	2015
विटामिन 'ए' की कमी से उत्पन्न रोग	रतौंधी	607	684	465	435	386	410	704
	नेत्रशुष्कता	2228	1906	4272	4474	3799	3178	3446
विटामिन 'सी' की कमी से उत्पन्न रोग		535	447	248	253	228	222	230
विटामिन 'डी' की कमी से उत्पन्न रोग		2255	655	588	580	387	387	376

स्रोत : स्वास्थ्य परिवार कल्याण मंत्रालय, महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता का मेनुअल, भारत सरकार।

(iii) विटामिन 'डी' की कमी से उत्पन्न रोग- ऑस्टीओमलेसिया :

विटामिन 'डी' व कैल्शियम की कमी आस्टिओमलेशिया रोग को जन्म देती है। यह रोग गन्दी गलियों में रहने वाले निम्न सामाजिक स्तर के बूढ़े व्यक्तियों तथा गर्भवती व दूध पिलाने वाली माताओं में अधिकतर पाया जाता है। चूंकि सूर्य की धूप विटामिन 'डी' का अच्छा स्रोत है। अत: जिन परिवारों में पर्दा प्रथा है, वहाँ यह रोग अधिक पाया जाता है। इस रोग (अस्थिरमृदुता) में मुख्यत: अस्थियाँ नरम पड़कर मुड़ जाती हैं।

निदान- विटामिन 'डी' की कमी से उत्पन्न रोगों के निदान के लिए दूध, मक्खन, अण्डा एवं मछली के तेल को उपयोग में लाना चाहिये। ऐसे स्थानों पर रहना चाहिए, जहाँ पर सूर्य का प्रकाश पूर्ण रूप से पहुँच सके। जहाँ पर पर्दा प्रथा है, वहां पर पर्दा प्रथा को समाप्त किया जाये।

(3) खनिज हीनताजन्य रोग : आयरन की कमी से उत्पन्न रोग : रक्ताल्पता के कारण एवं निवारण

यद्यपि एटा जनपद में आयरन की प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत प्राप्ति आवश्यकता से अधिक है, किन्तु जनपद के विभिन्न क्षेत्रों में कुछ ऐसे परिवार हैं, जिनमें आवश्यकता के अनुरूप आयरन की प्राप्ति नहीं होती। पोषण सम्बन्धी ज्ञान के अभाव में प्राय: गर्भवती महिलाओं को उनकी आवश्यकता के अनुरूप आयरन

की प्राप्ति नहीं हो पाती। इसी कारण वे कई प्रकार के रोगों से पीड़ित रहती हैं। इन रोगों में रक्ताल्पता विशेष उल्लेखनीय हैं।

यह रोग आयरन, विटामिन 'बी' तथा फोलिक एसिड की कमी के कारण होता है। शरीर में रक्त की कमी होना इस रोग का एक मुख्य कारण है। वस्तुतः भारत में 95 प्रतिशत से भी अधिक गर्भवती महिलाओं में आयरन की कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त बढ़ते हुए बच्चों तथा पराजीवी रोगों, जैसे- मलेरिया से पीड़ित व्यक्तियों में भी यह रोग हो जाता है।

हमारे शरीर मे ऊतकों (टिशुओं) की तीव्र वृद्धि के कारण लौह खनिज की अधिक आवश्यकता पड़ती है। इसी कारणवश थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल पर शिशुओं को जन्म देने वाली महिलाओं को प्रायः

सारिणी-3

जनपद एटा में खनिज हीनताजन्य रोग (रक्ताल्पता) से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या

(वर्ष 2009 - 2015)

रोग का नाम	2009	2010	2011	2012	2013	2014	2015
रक्ताल्पता	5959	1688	2567	1303	1038	930	591

स्रोत : स्वास्थ्य परिवार कल्याण मंत्रालय, महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता का मेनुअल, भारत सरकार।

रक्ताल्पता हो जाती है।

निदान- रक्ताल्पता रोग से बचने के लिए हमें अण्डा, दूध, मांस, गाजर, टमाटर, पत्तेदार शाक, प्याज, दाल, अनाज एवं मेवे तथा फलों आदि का सेवन करना चाहिए।

(4) अन्य हीनताजन्य रोगों के कारण एवं निवारण

(i) अतिसार-

यह रोग विटामिन की कमी से भी होता है। अतः यह रोग संक्रमण से होता है। इसका प्रमुख कारण जल व भोजन का दूषित होना है। जीवाणु युक्त दूध व कच्चे सड़े फल भी संक्रमण में सहायक हैं। मक्खियाँ इस रोग को फैलाने में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। पेट में ठण्ड से अथवा गर्मी लगने से भी यह रोग हो जाता है। यह पाचन क्रिया से प्रभावित होने के कारण होता है, जैसे- किसी विशेष भोज्य पदार्थ से संवेदनशीलता होना, वैक्टीरिया द्वारा किण्वीकरण, भोज्य तत्वों की हीनता, मानसिक अस्थिरता आदि। जीवाणुओं के संक्रमण के कारण, जैसे- टाइफाइड, पेचिश, कुअवशोषण व भोज्य विषाक्त आदि से भी अतिसार हो जाता है। इसी प्रकार विटामिन 'ए' की कमी से तथा पेलेग्रा में नायसिन की कमी से अतिसार होता है। एटा जनपद में ऐसे बहुत से परिवार हैं, जो इस रोग से पीड़ित हैं।

निदान- इस रोग से बचने के लिए साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिये, तथा खाने की चीजों को मक्खियों से बचाना चाहिये। इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों को तरल पदार्थ अधिक लेने चाहिये, जैसे-

सारिणी-4

जनपद एटा में अन्य हीनताजन्य रोग (अतिसार, पथरी) रोग से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या

(वर्ष 2009 - 2015)

रोग का नाम	2009	2010	2011	2012	2013	2014	2015
अतिसार	495	192	299	297	396	398	404
पथरी	212	213	217	210	40	23	77

स्रोत : स्वास्थ्य परिवार कल्याण मंत्रालय, महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता का मेनुअल, भारत सरकार।

फलों का रस, नींबू का शर्बत, अनाजों का पानी/मांड आदि उपयोग करना चाहिये।

(ii) पथरी-

यह रोग कार्बोहाईड्रेट की कमी से होता है, चूंकि इस जनपद के मनुष्यों के भोजन में कार्बोहाइड्रेट की कमी नहीं रहती है। अत: यहाँ पथरी के रोगियों की संख्या काफी कम है। सारणी में एटा जनपद में पथरी के रोगियों की संख्या को प्रदर्शित किया गया है।

निदान- कार्बोहाईड्रेट में कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन का सम्मिश्रण रहता है। कार्बोहाइड्रेट की पूर्ति के लिए चावल, गेहूँ, ज्वार, मक्का, अखरोट, साबूदाना तथा आलू, चुकन्दर, शकरकन्द, अंगूर, गन्ना एवं गुड़ का उचित मात्रा में सेवन करने से पथरी जैसी बीमारियों से बचा जा सकता है।

निष्कर्ष- शोध पत्र में प्रस्तुत तथ्यों से निष्कर्ष निकलता है कि एटा जनपद में हीनताजन्य रोग ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक पाये गये हैं, जोकि कुपोषण के कारण होते हैं। यदि भविष्य में सन्तुलित भोजन व स्वच्छता पर ध्यान दिया जाये, तो इन रोगों (हीनताजन्य) से बचा जा सकता है।

: सन्दर्भ सूची :

1. District Gazzetters, Etah.
2. Primary Census Hand Book of District Etah, 1981-2001, Part-X-A & B.
3. District Statistical Hand Books of Etah (From 2001 to 2015).
4. U.P. At A Glance : District wise Statistical Overview, 2001 & 2015 (Jagran Presentation).
5. नियोजन एटलस, जनपद एटा, 2007 से 2015 तक।
6. सांख्यिकीय पत्रिका जनपद एटा, अर्थ एवं सांख्यिकीय, एटा 2007 से 2015 तक।
7. सामाजिक आर्थिक समीक्षा, जनपद एटा, 2009 से 2015, तक
8. सिंह, जगजीत (1988), आहार में अव्यवस्था और बीमारियाँ ख नवभारत टाईम्स, नई दिल्ली, 2 मई, 1998.
9. स्वामीनाथन, एम. (1986), आहार एवं पोषण विज्ञान, द्वितीय संस्करण।
10. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय (1978), महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता का मैनुअल, प्रथम खण्ड, भारत सरकार।

Samaj Vigyan Shodh Patrika

Vol. 2 No. XXXX (2017-18)
ISSN 0973-7626
RNI: UPBIL/2005/16107
OCTOBER 2017 - MARCH 2018

'बुधुवा की बेटी' और 'उग्र' जी की दलित-चेतना

डॉ. रेखा चौधरी
प्रवक्ता- हिन्दी विभाग
आ.क.पा. (पी.जी.) कॉलेज, खुर्जा

छायावाद युग अपनी नव्यतम उपलब्धियों के बीच जब सारे रचनात्मक आयामों के साथ पूर्ण विकास को प्राप्त हो रहा था और छायावादी रचनाकार अतिशय कल्पनाशीलता, भाव प्रवणता और जीवन के संगीत के साथ अपनी अभिव्यक्ति में एकाकार हो रहे थे, तब पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने यथार्थ की आँच को दीये की लौ की तरह प्रज्ज्वलित किया और अपने लेखन का विषय बनाया– समाज के एक ऐसे तबके को, जो घरों से मैला ढोने के कारण अस्पृश्यों की निकृष्टतम स्थिति में था। 1928 में उनकी प्रसिद्ध औपन्यासिक रचना प्रकाशित हुई 'बुधुवा की बेटी'। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि छायावाद युग के यशस्वी रचनाकारों की यथार्थवादी कृतियाँ 'बुधुवा की बेटी' के बाद ही प्रकाशित हुईं। भारतीय नवजागरण में हिन्दी रचना संसार ने जो रास्ता दिखाया, छायावाद युग में वह एक अलग सपना बनकर उतरा, जिसके पीछे इतिहास का पुनराख्यान, स्वर्णिम अतीत का गौरव, और जागरण का संदेश प्रमुख था। लेकिन जिस रचनाकार में वह सामाजिक विद्रूपताओं की परिधि में एक आवेश, एक आक्रोश और एक आक्रमण बनकर मुखरित हुआ, वे रचनाकार थे 'उग्र' जी। 'उग्र' जी 'बुधुवा की बेटी' और 'चॉकलेट' के कारण, अपने समय की चुनौती स्वयं बने। दोनों ही कृतियों में दो तरह का सामाजिक दंश उभरा, एक में बच्चों और किशोरों का यौन शोषण लेखन का विषय बना, तो दूसरे में हिन्दू समाज की विद्रूपतम परम्परा 'अस्पृश्यता'। उग्र जी ने इस समस्या की गहराई को खूब देखा, मजे से परखा और उन्हें यह बात लगातार समझ में आती रही कि, जब तक हिन्दू समाज, समानता के आदर्शों से अलग हटकर मनुष्य को अछूत या भंगी मानता रहेगा, उसमें ब्रह्म प्रकाश की रेखा नही देख पायेगा, तब तक उसके विकास की कोई संभवना नहीं है।

"नहीं डर मत, संकोच भी मत कर, जरूर बता ! मैं देखना चाहता हूँ उस व्यक्ति को, जो अछूत या भंगी समझ कर तुझसे घृणा करता है। तुझे सबकी तरह पंचतत्व का पुतला नहीं मानता। तुझमें भी परम प्रकाश की एक रेखा नहीं देखता।"[1]

उग्र इस समत्व दृष्टि को व्यावहारिक जामा पहनाने के लिए खडे हैं। उन्हें पता है 'भंगी हो या बराभन, सबकी काया एक ही मिट्टी से तो संवारी गयी है।' उग्र की सामाजिक यथार्थवाद को लेकर 1928 में भी छायावाद युग में चुनौती है। उन्हें भारत का अतीत याद आता है, जब छायावाद का रचनाकार अतीत के पात्रों में किसी दैवी उपाख्यान या इतिहास–कथा से अपना विषय चुन रहा है। तब उग्र को यह बात याद है–

'जहाँ किसी समय प्रत्येक प्राणी ईश्वर समझा जाता था, इस समय एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपने से जाति में छोटा समझता है, कुल में छोटा समझता है, नीच समझता है, पतित समझता है, अस्पृश्य समझता है।'[2]

उग्र जी को यह पता है कि– 'हिन्दू मूर्ख हैं। उन्हें अभी संसार के चरणों की अनेक ठोकरें खानी हैं, इसीलिए उनके यहाँ इतनी जातियाँ, उपजातियाँ, ऊँच– नीच और अछूत हैं।'[3] उग्र भारतीय समाज की इस विसंगति को छायावाद के उत्कर्ष काल में रचना का विषय बनाने वाले सबसे समर्थ रचनाकार हैं। वे दलित– चेतना के प्रथम पुरूष ज्ञात होते हैं, जिनकी वाणी ने जीवन के इतने वड़े व्यापक यथार्थ को लेखन का विषय बनाया।

'बुधुवा की बेटी' उपन्यास का सृजन जिन बिन्दुओं के आस–पास हुआ है, उनमें प्रमुख है– भंगी लोगों की बस्ती, वुधुवा का अपना जीवन और उससे सम्बन्धित घटनाक्रम। यह एक विचारणीय विषय है की भंगी परिवारों के घटनाक्रम, उनके अभाव, उनकी दुर्दशा अथवा उनकी पारिवारिक, आर्थिक स्थिति पर उपन्यास में व्यापक चर्चा नहीं के बराबर है। इससे ऐसा लगता है कि उग्र जी का उद्देश्य भंगियों के पारिवारिक जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करना नहीं है। उपन्यास का दूसरा बिन्दु है, बुधुवा के जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित वह घात–प्रतिघात, जिससे जुड़कर कहानी कई–मोड़ काटती है। वुधुवा की पहली स्त्री की मृत्यु, सुकली (दूसरी पत्नी) का उसके जीवन में आना और बच्ची का जन्म इसका अगला पड़ाव है, पुत्र प्रप्ति की कामना में उसका एक मौलवी से सम्पर्क, और उसके अनाचार के कारण सुकली की बुधुवा द्वारा हत्या। कहानी का एक मोड़ और है, जब बुधुवा को फाँसी की जगह आजीवन कारावास का दण्ड मिलता है, और जब वह छूटकर आता है तो, उसका प्रौढ़ मस्तिष्क जाति के संगठन, उसकी उन्नति के उपाय, जन–जागरण में अधिक लीन होता है। उसकी बेटी इस कथा का मुख्य हिस्सा नहीं प्रतीत होती है, चूँकि उसका पालन–पोषण एक ईसाई परिवार में हुआ है, इसलिए ईसाई जीवन की आधुनिकता और उसकी विडम्बना राधिका (रधिया) को कई उतार–चढ़ावों से जोड़ती है। लेकिन तब भी केन्द्रीय चरित्र बुधुवा का ही है। और उपन्यास के अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है। इस तरह बुधुवा का चारित्रिक विकास ही उपन्यास की संवेदना का केन्द्र है। दूसरे शब्दों में छायावाद युग की उदात्त परम्परा में एक अछूत पात्र के माध्यम से, हजारों साल से चली आने वाली हिन्दू धर्म की अस्पृश्यता की कुरीति को रेखांकित करने का यत्न लेखक ने किया है।

उपन्यास की कथा का विकास जिन महत्वपूर्ण संदर्भों को लेकर हुआ है, उनमें कीनाराम मठ से सम्बन्धित एक अघोरी का चित्र सबसे महत्वपूर्ण है, जो सारे जागरण की प्रेरणा है। हिन्दू जाति के उद्धारक के रूप में प्रस्तुत उसका व्यक्तित्व पूरे उपन्यास में प्रकाशपुन्ज बनकर खड़ा है। उसकी जन–कल्याणकारी चेतना सबसे पहले जिस दलित, उपेक्षित अस्तित्व को जीवन का रास्ता दिखती है, वह है, बुधुवा की करुणा, जिसे ऊँची जाति के लोग छूने से भी कतराते हैं, जिसकी मातृविहीन बालिका को किसी भी हिन्दू परिवार में संरक्षण नहीं मिलता, और तब वह एक ईसाई परिवार में पाली जाती है। यह प्रकरण और भी महत्वपूर्ण इस कारण भी है कि, आजादी पूर्व के इस देश में रहने वाले ईसाई अंग्रेज परिवार यहाँ की शासक जाति से सम्बंधित रखते हैं। इन्हीं में एक मि0 जानसन के घर में बुधुवा की बेटी का पालन–पोषण होता है।

औपन्यासिक कथा के विकास में तीन समानान्तर धर्मो की चर्चा देखी जा सकती है। कुरीतियों में डूबा हुआ हिन्दू धर्म, जिसका एक अंग है 'बुधुवा'। सेवाव्रती ईसाई धर्म, जो अपनी विसंगतियों के बाद भी बुधुवा की बेटी को अनुसरण देता है। तथा इस्लाम धर्म, जिसका एक मौलवी बुधुवा की पत्नी (रधिया की माँ) की मृत्यु का कारण बनता है। कथा के विकास के चरणों में सबसे अधिक औघड़

स्वामी के वृत्त का ही उल्लेख है। इस स्वामी के ही माध्यम से ब्राह्मण परिवार की कुरीतियों और बुराईयों की गम्भीर चर्चा की गयी है, तथा हिन्दू धर्म और ईसाई मजहब का स्थान–स्थान पर तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए रचनाकर एक मध्यमार्गी जीवन–दर्शन की प्रतिष्ठा करता है। ये औघड़ स्वामी मनुष्यानन्द ब्राह्मण कुल में ही उत्पन्न हैं, लेकिन अपनी पत्नी की कामान्धता के कारण घर का परित्याग कर देते हैं, और जो सेवा के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं, उसमें वासना और कामना के लिए कोई जगह नहीं रहती है। बचती है केवल पवित्र सेवा–साधना। स्वामी में दलितों–उपेक्षितों के प्रति दया का बड़ा सघन भाव है। समाज के तिरस्कृत और दलित इसी सेवाभाव के कारण सम्मानित हैं, तथा स्वामी मनुष्यानन्द एक संगठित जीवन–दर्शन की आदर्श योजना प्रस्तुत करते हुए, बुधुवा की तिरस्कृत भंगी जाति को सामाजिक उत्थान और उन्नयन की प्रेरणा देते हैं। उपन्यास मे हड़ताल, सफाई कर्म का महीनों विरोध और अपने अस्तित्व और अधिकार के लिए तत्परता की व्यापक चर्चा उपन्यास में देखी जा सकती है। बुधुवा को मनुष्यानन्द की प्रेरणा से ही एक सदाचारी जातिनायक का गौरव मिलता है। और वह अपनी जाति में एक साई की तरह, एक सन्त की तरह पूजनीय हो जाता है।

उपन्यास का अन्त जिस चरम सीमा पर हुआ है, उसके आस–पास एक बड़ी घटना का उल्लेख हुआ है। वह घटना है बाबा विश्वनाथ के मन्दिर में औघड़ स्वामी के नेतृत्य में भंगी समूह का प्रवेश और भोलेनाथ की जय–जयकार'। मंदिर–प्रवेश और अस्पृश्यता तद्युगीन समाज की ज्वलन्त समस्या रही है, जिसके निवारण हेतु स्वामी दयानन्द का प्रयत्न एक ओर है, गाँधी का प्रयत्न दूसरी ओर। और महाराष्ट्र के दलितों (महार जाति) का आन्दोलन तीसरी ओर देखा जा सकता है। स्पष्ट है कि उपन्यास पर न तो गाँधीवादी आन्दोलन का कोई प्रभाव है, न ही मराठी आन्दोलन की कोई झलक। मनुष्यानन्द का चिन्तन 'आनन्द' शब्द से उन्हें महर्षि दयानन्द के करीब अधिक ले जाता है। उपन्यास की इस चरमसीमा में अस्पृश्यता से मुक्ति की भी चर्चा है, साथ में मंदिर–प्रवेश की उपलब्धि का भी व्यापक उल्लेख है।

दलित–चेतना का सम्बन्ध दो रचनात्मक बिन्दुओं से जुड़ता है। एक का सम्बन्ध हिन्दूवादी कट्टरता से छुटकारे का है, तथा दूसरे का, विरोध करते हुए, प्रतिषेध करते हुए, आन्दोलन करते हुए दलितों के स्वाभिमान की स्थापना से है। आज तक की मान्यताओं में दलित चेतना इन्हीं दो बिन्दुओं से घिरी हुई है। यह विचित्र लेकिन सत्य है कि, 1928 में अपनी कलम चलाते हुए उग्र जी बुधुवा की बेटी उपन्यास में इन दोनों ही बिन्दुओं का उद्घाटन, उसका चित्रण, उसका सामाजिक प्रतिफलन गौरव के साथ प्रस्तुत करते हैं। 'बुधुवा की बेटी' निश्चित रूप से छायावादयुगीन लेंखन में लेखकीय दृष्टि को ध्यान में रखते हुए एक चुनौती है।

दलित–चेतना की स्थापना में दलितों के लिए पाठशाला, दलित संगठन, दलित संघ और दलितों के बीच में एक श्रेष्ठ मनुष्य की परिकल्पना, केवल तद्युगीन प्रयत्न ही नहीं है, एक स्थापना भी है कि 'अच्छे लोग किसी भी कुल में उत्पन्न हो सकते हैं 'बुधुवा और उसके जीवन के विकास का ग्राफ इस बात का सीधा प्रमाण है। उपन्यास में एक बिन्दु शुरू से आखिर तक अलग– अलग पात्रों के माध्यम से निरूपित है। वह है,' स्त्री–चरित्र'। विसंगतियाँ ही व्यभिचार के जन्म का कारण हैं, यह बात पूरे उपन्यास में स्थापित है। इस कारण मनुष्यानन्द की जीवन संगिनी का चरित्र भी परम्परा के विपरीत होते हुए भी अस्वाभाविक नहीं बताया हैं। यही स्थिति निम्न परिवार की स्त्री सुकली की है, जो पुत्र की इच्छा में एक दुःसाहसिक कदम दठा लेती है, और अपने पति द्वारा मार दी जाती है। उपन्यास की तीसरी स्त्री है मि0 यंग की पत्नी, विदेशी शिक्षा में ढली–पली 'नारी स्वातन्त्र्य समिति' की संचालिका, लेकिन सहज वासना से वह भी

मुक्त नहीं है। उपन्यास की नायिका राधिका (रधिका) भी इस स्वभावधर्म से अलग नही है। लेखक इनमें से किसी भी पात्र के प्रति वितृष्णा नहीं प्रकट करता, लेकिन इनके आचरण को प्रश्नचिन्ह से मुक्त भी नहीं रखता। सामान्य विचारणा में स्त्री भी दलित समुदाय का एक भाग है, लेकिन पूरे उपन्यास में उसके इस स्वरूप पर लेखक ने केवल संकेत भर किया है। सबके बावजूद 'स्त्री स्वातन्त्र्य समिति' की चर्चा छायावाद युग में अपने आप में एक प्रश्न चिह्न अवश्य है। यह विचारणा नारी–मुक्ति प्रयत्न बनकर छायावादी कविताओं में खूब उभरी हैं।

: सन्दर्भ सूची :

1. बुधुवा की बेटी, बेचन शर्मा उग्र, पृष्ठ–58
2. बुधुवा की बेटी, बेचन शर्मा उग्र, पृष्ठ–60
3. बुधुवा की बेटी, बेचन शर्मा उग्र, पृष्ठ–124

: अन्य संदर्भित साहित्य :

1. साहित्य और सर्वहारा - डॉ0 मैनेजर पाण्डे।
2. जाति, वर्ग और व्यवसाय - जी0 एस0 धुर्ये।
3. दलित कहाँ जायें - श्री जियालाल आर्य।
4. दलितों की समस्या- दीवान गोकुल चन्द कपूर
5. बुधुवा की बेटी (उपन्यास) - पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'।
6. दलित साहित्य आंदोलन - चन्द्रकुमार वरठे।
7. चतुरी चमार - निराला।
8. गोदान - प्रेमचन्द।
9. कर्मभूमि - प्रेमचन्द।
10. स्मृति की रेखायें - महादेवी वर्मा।

Samaj Vigyan Shodh Patrika

Vol. 2 No. XXXX (2017-18)
ISSN 0973-7626
RNI: UPBIL/2005/16107
OCTOBER 2017 - MARCH 2018

कृषि एवं कृषकों की समृद्धि पर सिंचाई का प्रभाव

डॉ. शीबा फ़रीदी
प्रवक्ता–भूगोल विभाग
वाई.एम.एस. (पी.जी.) कॉलिज
मण्डी धनौरा, अमरोहा।

सारांश

सिंचाई से संबंधित अध्ययनों में सिंह तथा सरस्वत[1], सिन्हा[2] के कार्य उल्लेखनीय रहे हैं, जिन्होंने सिंचाई के प्रभावों का आकलन कृषि उत्पादन एवं किसानों की आय पर पड़ने वाले अनुकूल परिणामों पर किया है। प्रस्तुत अध्ययन उद्घाटित करता है कि सिंचाई का प्रयोग उन्नत बीजों तथा अन्य वैज्ञानिक निवेशों, जैसे– रासायनिक उर्वरक, कीटनाशकों एवं फार्म मशीनरी आदि के साथ करने से कृषि क्षेत्र में उत्पादकता तथा उपज की दर में लगातार वृद्धि हुई है। इसके द्वारा कृषकों की सम्पन्नता के संचार को वास्तविक भेदन मिला है। कृषि क्षेत्र में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न योजना कालों में उल्लेखनीय उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। प्रस्तुत कार्य के पूर्ववर्ती अध्ययनों में स्पष्ट हो चुका है कि प्रमुख खाद्यान्न फसलों एवं मुद्रादायिनी वाणिज्यिक फसलों के क्षेत्र में विस्तार का एक मात्र कारण सिंचाई सुविधाओं का प्रसार रहा है। प्रमुख फसलों के क्षेत्रफल एवं प्रति हेक्टेयर उपज से अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत कृषकों के मध्य आय–वृद्धि की स्थिति को समझा जा सकता है। अध्ययन अवधि में कृषि उपज की वृद्धि कृषकों की समृद्धि का पर्याय मानी जा सकती है।

कृषि उत्पादकता पर प्रभाव :–

कृषि अध्ययन में कृषि क्षमता को निर्धारित करने के लिए विधि संबंधी पर्याप्त साहित्य मिलता है। स्टाम्प[3] ने प्रति इकाई क्षेत्र की कृषि उत्पादकता को निर्धारित करते समय यह बताया है कि कृषि उत्पादकता में क्षेत्रीय अंतर अंशतः जलवायु एवं अन्य प्राकृतिक अनुकूलित दशाओं तथा अंशतः फार्मिगं क्षमता की देन है। उत्पादकता कृषि क्षमता का ही मापक है, जिसमें उत्पादन वृद्धि के दृष्टिकोण से लागत कारकों का प्रयोग किया जाता है। कृषि उत्पादकता में वृद्धि का संबंध लागत चुनाव मात्रा तथा तकनीकी कुशलता से है, जिनका उत्पादन प्रक्रियाओं के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। कृषि उत्पादकता तथा कृषि क्षमता के मापन का प्राथमिक संबंध प्रति एकड़ उत्पादन से है, जो सभी भौतिक एवं सांस्कृतिक कारकों के अन्तर्सम्बधों की देन है। किसी भी क्षेत्र की कृषि उत्पादकता उस क्षेत्र विशेष की कृषि सक्रियता, कृषि गहनता एवं कृषि कुशलता पर निर्भर करती है। यदि इनमें कमी आ जाती है, तो उत्पादकता कम हो जाती है, और साथ ही यदि किन्ही कारणोंवश कृषि उत्पादकता क्षीण होती है, तो स्वतः कृषि कुशलता भी घट

जाती है। अतः कुशलता का गहन संबंध कृषि उत्पादकता से है, विशेषकर कृषि उत्पादकता बढ़ाने में जिन कारकों का महत्वपूर्ण योगदान है, उनमें भौतिक पृष्ठभूमि के अतिरिक्त उन्नतशील बीजों, उर्वरकों, सिंचाई के साधनों, यंत्रीकरण, कृषक प्रशिक्षण इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ विद्वानों ने उर्वरकों के आधार पर उत्पादकता बढ़ाने के प्रयासों का विश्लेषण किया है।

पाल[4], शफी[5], बक[6], धवन[7], सिन्हा[8], सिंह ए[9] तथा हुसैन[10] आदि विद्वानों ने कृषि क्षमता तथा कृषि उत्पादकता शीर्षक के अंतर्गत महत्वपूर्ण अध्ययन किये हैं। लेखक के मतानुसार, कृषि क्षमता तथा उत्पादकता का प्रयोग कृषि क्षमता की अपेक्षा अधिक उचित प्रतीत होता है। यही कारण है कि आज सभी कृषि भूगोलवेत्ता क्षमता निर्धारण में 'कृषि उत्पादकता' शब्दावली का प्रयोग करते हैं। भिन्न– भिन्न विद्वानों ने कृषि क्षमता को निर्धारित करने में अलग–अलग विधियों को अपनाया है। विधि संबंधी इन सभी उपागमों को सात वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

क. कृषि उत्पादन से प्राप्त आय पर आधारित विधि।
ख. प्रतिश्रम लागत इकाई उत्पादन पर आधारित विधि।
ग. कृषि उत्पादन से प्रति व्यक्ति उपलब्ध अन्न पर आधारित विधि।
घ. कृषि लागत–आय पर आधारित विधि।
ङ. प्रति एकड़ उपज तथा कोटि गुणांक पर आधारित विधि।
च. फसल क्षेत्र तथा प्रति क्षेत्र इकाई उत्पादन पर आधारित विधि।
छ. भूमि के पोषक भार–क्षमता पर आधारित विधि।

एस.एस. भाटिया[11] (1967) ने उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों की कृषि क्षमता निर्धारित करने में एक विशेष सूत्र का प्रयोग किया है। इनका अनुमान है कि (क) प्रति एकड़ उपज भौतिक एवं मानवीय पर्यावरण का प्रतिफल है। (ख) अनेक फसलों के अंतर्गत क्षेत्र भूमि उपयोग से संबंधित अनेक कारकों के प्रभाव को प्रदर्शित करता है। फलस्वरूप, कृषि क्षमता प्रति एकड़ उत्पादन तथा फसल क्षेत्र दोनों तथ्यों की देन है।

शस्य प्रारूप एवं सघनता पर प्रभाव :

विभिन्न फसलों के उत्पादन के लिए इनकी जल संबंधी आवश्यकताएं अलग–अलग होती हैं। रबी फसलों यथा गेंहू, गन्ना, आलू आदि, जिनमें वर्षा के अभाव में सिंचाई की आवश्यकता अधिक रहती है, का क्षेत्र सिचांई साधनों की उपलब्धता के अनुसार निर्धारित होता है। यद्यपि सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता होने पर क्षेत्र विशेष का शस्य प्रारूप पर प्रभाव की सापेक्षिक मांग फसलों से कृषकों को प्राप्त होने वाले आर्थिक लगान आदि के द्वारा निर्धारित होती है, तथापि प्रथम दृष्ट्या फसल प्रतिरूप के निर्धारण में सिंचाई सुविधाओं के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। शस्य सघनता से तात्पर्य उस फसल क्षेत्र से होता है, जिस पर वर्ष में एक फसल के अतिरिक्त अन्य कई फसलें उगाई जाती हैं। किसी भी क्षेत्र में शुद्ध बोये गये क्षेत्र की अपेक्षा सकल बोये गये क्षेत्र का अधिक होना शस्य गहनता को प्रदर्शित करता है। यह सामयिक बिन्दु है, जहां भूमि, श्रम, पूंजी तथा प्रबंध का सम्मिश्रण सर्वाधिक लाभप्रद सिद्ध होता है।[12] डॉ. चौहान ने इसे शस्य तीव्रता का कहा है और इसकी अवधारणा को एक सूचकांक के रूप में प्रस्तुत किया है।[13]

शस्य तीव्रता का सूचकांक 100 होने का तात्पर्य है कि किसी क्षेत्र में वर्ष में केवल एक बार फसल प्राप्त की जाती है, जबकि 100 से अधिक सूचकांक बहुफसली अथवा एक से अधिक बार बोये गये क्षेत्र की अधिकता का सूचक होता है। शस्य गहनता किसी क्षेत्र विशेष में सिंचाई साधनों की उपलब्धता तथा उनकी सिंचन क्षमता पर विशेष रूप से निर्भर करती है। यद्यपि, कम समय में पकने वाले उन्नत किस्म के बीज, मशीनीकरण

का स्तर, रासायनिक उर्वरक आदि का भी शस्य–गहनता निर्धारण में योगदान रहता है, तथापि सिचांई साधनों की सुलभता एक महत्वपूर्ण कारक है।

सिंचाई एवं रोजगार –

सिंचाई के प्रभाव के अन्तर्गत कृषि में रूपान्तरण की अवस्था आने लगती है, क्षेत्र में रोज़गार में वृद्धि होने लगती है। यह वृद्धि कृषि श्रमिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में कार्य करने वाले श्रमिकों की मांग के रूप में देखी जा सकती है। पिछले दो दशकों से गन्ना एवं अन्य कृषि उत्पादों के मूल्य में पर्याप्त वृद्धि होने से ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में मकानों में प्रयुक्त होने वाले खिड़की एवं दरवाजों का लोहे से तैयार करने वाले कुटीर व्यवसाय का तेजी से विकास हुआ है। प्रायः देखा गया है कि अधिकांशतः कृषक सुरक्षा की दृष्टि से अपने मकानों के बाहरी प्रवेश द्वार पर बड़े आकार के दरवाज़े (फाटक) को लोहे का बना हुआ ही पसंद करते हैं। इसलिए नलकूपों में लगे मोटर तथा अन्य सामानों को सुरक्षा के लिये भी इनका प्रचलन बढ़ा है। भारी मांग के कारण इन्हें तैयार करने वाले व्यक्तियों (लुहारों) का विस्तार नगरों से ग्रामीण क्षेत्रों में भी पहुंच गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में पक्की छतों वाले मकानों का निर्माण तेजी से हुआ है तथा इसी कारण लोहा इस्पात उद्योगों की मध्यम स्तरीय इकाईयों की स्थापना हुई है, जो मुख्यतः सरिया का निर्माण स्क्रेप के द्वारा करते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि ट्रेक्टरों में प्रयुक्त होने वाली ट्राली, अनाज भंडारण के लिये छोटे से बड़े आकार तक डिब्बे (कोठियां) टिन की चादरों से बनाई जाती हैं। कृषकों के लिए दैनिक कृषि कार्यों में प्रयुक्त होने वाले खुरपों, फावड़े, कुल्हाड़ी, गंडासे, दराती इत्यादि को बनाने एवं बेचने से भी सैकड़ों व्यक्तियों के परिवारों का पालन पोषण होता है। कहा जा सकता है कि सिंचाई के विकास से प्राप्त होने वाले लाभ एवं रोजगार केवल किसानों तक ही सीमित नहीं रहे हैं, अपितु इसके प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग कृषि श्रमिकों, व्यापारियों एवं अन्य में दिखाई देते हैं। कृषक समाज ने जहां कृषि में सिंचाई का प्रयोग कर अधिक लाभ कमाया है, वहीं, उसके लाभ का पुनर्वितरण सभी सामाजिक समुदायों में हुआ है, चाहे वह व्यापारी वर्ग है अथवा यातायात एवं निर्माण व्यवसाय से जुड़े व्यक्ति। अतः एक निर्विवाद सत्य के रूप में सिंचाई का विकास कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के साथ–साथ उसे नवीन तथा उन्नत मार्ग की ओर अग्रसर करता है, जिसमें प्रत्येक वर्ग के लिए अपने भविष्य को संवारने के अवसर निहित होते हैं।

सिंचाई एवं क्षेत्रीय आर्थिक विकास–

कृषि प्रणाली में सिंचाई की आवश्यकता कृषि उत्पादकता के स्थायित्व निरंतरता और विकास का पर्याय बन गई है। कृषक को अपने दिन–प्रतिदिन के कृषि कार्यों के निष्पादन में जल–प्राप्ति के प्रयासों से दो चार होना ही पड़ता है। कुछ महत्वपूर्ण काल अवधि में जल की उपलब्धता कृषि फसलों की वृद्धि और उत्पादन दोनों के लिये श्रेष्ठ मानी जाती है तथा कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के निर्धारण में इसकी निर्णायक भूमिका होती है। गंभीरतापूर्वक विचार करने पर आसानी से समझा जा सकता है कि वास्तव में सिंचाई ही कृषि को वह मजबूत आधार प्रदान करने में सक्षम होती है, जो क्षेत्रीय कृषि के स्वरूपों में परिवर्तन लाकर कृषि में स्थायित्व और सुरक्षा को सुनिश्चित करती है, जिससे कृषकों एवं कृषि श्रमिकों में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है और अन्ततः क्षेत्र विशेष में समृद्धि का संचार होता है। सिंचाई का विकास किसी सामाज के आर्थिक उन्नयन हेतु न केवल बेहतर सुअवसरों को प्रदान करता है, अपितु इसके द्वारा विभिन्न योग्यताधारक श्रमिकों के लिए रोजगार भी आसानी से जुटाये जा सकते हैं। अमेरिका में एक परियोजना के निर्माण काल में परियोजना स्थल पर कार्यरत एक व्यक्ति अन्यत्र 4.25 श्रमिकों को रोजगार सृजित करता था, तथा एक पूर्ण परियोजना स्थानीय स्तर पर एक ग्रामीण मजदूर

2.39 अग्रामीण श्रमिकों की विभिन्न रूपों में सहायता करता है तथा स्थानीय औद्योगिक एवं व्यापारिक गतिविधियों की वृद्धि कृषि उत्पादन के मूल्य की 2.68 गुना होती है।[14]

सिंचाई के प्रभाव से अतिरिक्त उत्पादन होने से आर्थिक क्षेत्र में कई परिणाम दिखाई दे सकते हैं। प्रथमतः अधिक उत्पादन का तात्पर्य अतिरिक्त उपज भी कही जा सकती है, जिसे तैयार करना, बाजार तक पहुंचाना और यातायात किया जाना भी होता है, द्वितीयतः इस प्रकार अधिक उत्पादन से कृषक वर्ग की आमदनी में वृद्धि होती है, जिसे वह समय–समय पर विभिन्न तरीकों से व्यय भी करता है। इस परिस्थिति में कृषकों में कुछ नई आदतें भी जन्म ले लेती हैं, जो अन्ततः ऐसी आर्थिक क्रियाओं के क्रम को जन्म देती हैं, जिनसे अधिक श्रम और पूंजी निवेश की आवश्यकता अनुभव की जाने लगती है। तृतीयतः अधिक पैदावार का तात्पर्य विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों को अतिरिक्त आमदनी का उपार्जन से भी होता है। ये व्यक्ति भी इस आय को विभिन्न माध्यमों से व्यय करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आय प्राप्तकर्ताओं के द्वारा व्यय करना अनेक वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग में वृद्धि को प्रोत्साहित करने का कारण बनता है। वैसे भी सिंचाई के द्वारा ग्रामीण विकास एवं ग्रामीण सम्पन्नता का विषय भारतीय नियोजन काल का महत्वपूर्ण विषय रहा है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि के अन्य निवेश वही महत्वपूर्ण आशाएं रखने में समर्थ हैं, जैसी कि सिंचाई में पाई जाती हैं। सिंचाई परिव्यय के समग्र लाभ क्षेत्र में अनेक रूपों में परिलक्षित होने वाले लाभों का विशेष उपभोग वैसे तो कृषक ही करता है, किन्तु कुछ समय के बाद समाज के अन्य वर्ग भी सिंचाई के लाभकारी समुदाय में सम्मिलित हो जाते हैं। अनेक विश्लेषणों से तथ्य की पुष्टि होती है कि कृषि क्षेत्र की श्रमिक अवशोषण क्षमता सिंचाई के साथ बढ़ जाती है, क्योंकि भारत जैसे देश में श्रमिक समस्या और भी जटिल बन जाती है जहां औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिक मांग बहुत मन्द गति से बढ़ रही है। इन दशाओं में सिंचाई की भूमिका कृषि में क्रान्ति के सदृश से किसी मायने में कम नहीं है। वैसे भी सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण एवं उपयोग इनसे संबंधित समुदाओं के आर्थिक जीवन पर दूरगामी परिणाम डालने में सक्षम होते हैं। वास्तविकता यह है कि सिंचाई परियोजनाएं, चाहे वे वृहद्, मध्यम अथवा लघु आकार की हों, का विस्तार निश्चित रूप से उत्पादन की क्रियाओं, रोजगार, सेवा केंद्रों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों आदि के लिये अतिरिक्त अवसर प्रदान करती हैं।

यद्यपि सिंचाई सुविधाओं के विस्तार का आय वृद्धि पर प्रभाव से संबंधित अध्ययन बहुत ही कम हुए हैं। क्विजॉन एवं बिन्सवान्गर[15] ने भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था के 'सामान्य साम्य मॉडल' के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि सिंचाई क्षेत्र में 10 प्रतिशत की वृद्धि राष्ट्रीय वास्तविक आय में 1.7 प्रतिशत की वृद्धि कर देती है (ए.एस.सिरोही–1984)। सिंचाई के प्रभावों की योग्यता प्राथमिक प्रभाव के अप्रत्यक्ष एवं गौण प्रभावों को ध्यान में रखकर भली भांति समझी जा सकती है तथा इस प्रकार से सिंचाई के द्वारा आर्थिक उन्नति का ताना बाना बुनने की प्रक्रिया को कम करके आंकने से भी बचा जा सकता है।

उपसंहार

सिंचाई कृषि क्षेत्र का एक प्रमुख लागत तत्व है। यदि राष्ट्र के सभी कृषि क्षेत्रों में सिंचाई के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो जायें, तो कृषि उत्पादन कई गुना बढ़ाया जा सकता है, परंतु सभी भागों में सिंचाई साधनों की उपलब्धता में प्रादेशिक अंतर पाये जाते हैं। राष्ट्र में कहीं–कहीं ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जहां सिंचाई साधनों के अभाव में न केवल प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादन कम होता है, अपितु कृषि गहनता का सूचकांक भी कम होता है। यही नहीं, सिंचाई साधनों की कमी के चलते कृषि योग्य क्षेत्र के एक बड़े भाग का उपयोग कृषि

उत्पादन के लिए नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में शोधकर्ताओं का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे लघु क्षेत्रीय स्तर पर सिंचाई साधनों की वर्तमान स्थिति, सिंचाई साधनों से संबंधित समस्याओं तथा उनके विकास हेतु भावी सम्भावनाओं का आकलन करें, ताकि सरकार द्वारा निर्धारित योजनाओं में सिंचाई साधनों की स्थिति के अनुसार इन क्षेत्रों को स्थान मिल सके और सिंचाई साधनों के वितरण में व्याप्त क्षेत्रीय विषमताएं दूर हो सकें। सिंचाई में भी जल की बढ़ती हुई मात्रा का प्रयोग किया जा रहा है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में एक वर्ष में औसतन 12 हजार से 14 हजार लीटर जल का उपयोग किया जा रहा है।[16] भविष्य में सिंचित भूमि के क्षेत्रों की निरंतर वृद्धि होती रहेगी और उनके लिये जल की और अधिक आवश्यकता पड़ेगी। घेरलू तथा औद्योगिक उद्देश्यों के लिए जल को प्रभावित करने वाली दो मुख्य संरक्षण समस्याएं हैं– 1. जल प्राप्ति की मात्रा, तथा 2. जल के गुण, जिसमें जल का उपयोग होता है। जल के संरक्षण की सभी बातें इन दशाओं पर निर्भर करती हैं, जैसे– नगरों में जहां घरेलू उद्देश्यों के लिए अवमृदा तथा बहता हुआ जल जनसंख्या के एक विशाल भाग को प्राप्त होता है तथा प्रति व्यक्ति उपभोग में भी वृद्धि हो रही है। नगरीयकरण के साथ–साथ औद्योगिक उद्देश्यों के लिए जल का उपयोग बढ़ा है। इसी प्रकार नगरों में जनसंख्या की लगातार वृद्धि ने शहरों में अवशिष्ट एवं मल पदार्थों के निकास की समस्या को जटिल बना दिया है। इसके साथ ही औद्योगिक अवशिष्ट पदार्थ भी जल संसाधन को प्रदूषित करने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। परंतु यहां यह भी स्पष्ट करना समुचित होगा कि प्रदूषण तथा जल की पूर्ति में कमी का एक मात्र कारण नगरीकरण तथा औद्योगिकरण ही नहीं है, बल्कि क्षरण, बाढ़, वन विनाश तथा कम होता जल स्तर भी जल संरक्षण समस्याओं में सहयोग देने वाले तथ्य हैं। प्रदूषित जल रोगों को फैलाने वाले अधिक खतरनाक कारकों में प्रमुख स्थान रखता है। नलकूपों, कुओं, बोरिंग सैटों द्वारा अवमृदा जल को अधिकाधिक मात्रा में खींचे जाने से अवमृदा जल स्तर में तेजी से गिरावट हो रही है।

: सन्दर्भ सूची :

1. सिंह, डी.वी. एवं एस.पी. सारस्वत (1984), 'इम्पेक्ट ऑफ इर्रीगेशन ऑन क्रॉपिंग पैटर्न्स इन फार्म इन्कम अण्डर आप्टीमल सोल्यूशनः ए केस स्टडी इन फुट हिल्स ऑफ एच. पी., आई.एस.ए.सी., जनरल ऑफ एग्री कल्चर इकॉनों0, वोल्यूम – 39
2. सिन्हा, ए.के. (1978), ''इम्पेक्ट ऑफ इर्रीगेशन ऑन यील्ड्स', बेस्ड ऑन ए फाइव विलेज सर्वे इन भिवानी (हरयाणा), इण्डियन जनरल ऑफ एग्री. इकॉनो. वोल्यूम 33, नं0 1
3. स्टाम्प, एल.डी. :– ''द लैण्ड ऑफ ब्रिटेन एण्ड हाउ इट इज़ यूज्ड'', लन्दन
4. पाल, एस.पी. (1985,' कन्ट्रीब्यूशन ऑफ इर्रीगेशन टू एग्रीकल्चरल प्रोडक्शन एण्ड प्राडक्टिविटी', इन सी.ए.ई.आर., नई दिल्ली।
5. शफी, एम. (1986) –''वाटर मैनेज एण्ड क्रॉप प्रोडक्शन इन इण्डिया'', द ज्योग्राफी, XXIV
6. बक, जे.एल. (1937) : ''लैण्ड यूटिलाइजेशन इन चाइना'', लन्दन।
7. धवन, बी.डी. (1988), 'इर्रीगेशन इन इण्डियाज एग्रीकल्चरल डवलपमेण्ट', सेज पब्लिकेशन, पृ. 30–31
8. सिन्हा, ए.के. (1978) : ''इम्पैक्ट ऑफ इर्रीगेशन ऑन क्रॉपिंग पैटर्न एण्ड क्रॉप यील्ड्स, बेस्ड ऑन ए फाइव विलेज सर्वे इन भिवानी (हरियाणा), इण्डियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चुरल इकोनॉमिक्स, वो.–33
9. सिंह, ए. (1985) : ''इम्पैक्ट ऑफ इर्रीगेशन ऑन फार्म इकोनॉमी : ए स्टडी ऑफ पंजाब, दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ

10. हुसैन, एम. (1969) ''एग्रीकल्चर ज्योग्राफी'' इण्टर इण्डिया पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली।
11. भाटिया, एस.एस. (1965) : ''पैटर्न्स ऑफ क्रॉप कन्सट्रेशन एण्ड डाईवरसी फिकेशन इन इण्डिया'', इकोनॉमिक ज्योग्राफी, वॉल. XI
12. वाई.जी. जोशी (1972) – नर्मदा बेसिन का कृषि भूगोल, भोपाल, पृ. 84
13. ब्रजभूषण सिंह : कृषि भूगोल (प्रथम संस्करण) वाराणसी, पृ. 128
14. पान्से, वी.जी. एवं पी.वी. सुखात्मे (1978), 'स्टेटिस्टीकल मेथड्स फॉर एग्रीकल्चुरल वर्क्स, आई.सी.ए.आर, नई दिल्ली, प्र. 25
15. क्विजोन, जो.बी. एवं एच.पी. बिन्सवाल्गर (1984), 'इन्कम डिस्ट्रीब्यूशन इन इण्डियाः द इम्पेक्ट ऑफ पॉलिसीज इन इण्डिया, वाशिंगटन
16. एस.डी. कौशिक, संसाधन भूगोल, पृष्ठ–597

Samaj Vigyan Shodh Patrika

Vol. 2 No. XXXX (2017-18)
ISSN 0973-7626
RNI: UPBIL/2005/16107
OCTOBER 2017 - MARCH 2018

मुस्लिम महिला-शिक्षा : एक अध्ययन

डॉ० नाहीद परवीन
प्रवक्ता- समाजशास्त्र विभाग
वाई.एम.एस. (पी.जी.) कॉलिज
मण्डी धनौरा, अमरोहा।

प्रस्तावना

शिक्षा वास्तव में व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा व्यक्ति में आत्मनिर्भता, स्वायत्तता और अधिकार सम्पन्नता की भावना विकसित करती है। इससे उसे आत्मसंतोष, आत्मिक ऊर्जा और अपने अस्तित्व का अहसास होता है। सामाजिक सरोकार, पारस्परिक सद्भाव और सहनशीलता अपनाने में वह सफल होता है। इसी के माध्यम से मानव की सम्पूर्ण प्रदत्त प्रतिभा, योग्यता एवं भावनाओं का विकास सम्भव होता है। प्रत्येक मनुष्य को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, चाहे वह पुरूष हो या महिला। सभी के जीवन में शिक्षा का समान महत्त्व है।''[1]

महात्मा गांधी ने कहा है कि शिक्षा ही वह सशक्त माध्यम है, जो व्यक्ति को अज्ञानता की बेड़ियों से मुक्त कर सकती है, और एक खुशहाल समाज का निर्माण कर सकती है।''[2]

शिक्षा समाज का दर्पण है और इस नाते समाज की आशाओं, आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करना शिक्षा का कर्त्तव्य ही नहीं, अनिवार्यता भी हो जाती है। इस प्रेरिप्रेक्ष्य में शिक्षा का 'बहुजन हिताय' स्वरूप प्रधान होकर गरीब तथा वंचित वर्ग का नेतृत्व करता दिखाई देता है। इस सर्वहारा वर्ग के अधिकतर बालक–बालिकायें आर्थिक, सामाजिक या पारिवारिक कारणों से शिक्षा के निम्न स्तरों पर ही विद्यालय त्यागने पर मजबूर हो जाते हैं। ऐसे छात्र–छात्रायें कार्य जगत में स्थान बनाने के प्रयास में अक्सर जीवर भर अकुशल कारीगर के रूप में ही कार्य करते रह जाते हैं। अलग–अलग व्यवसाय क्षेत्रों में संलग्न बालक–बालिकाओं के इस समूह को कुशलता प्रदान कर स्वावलम्बी बनाने के बाद भारत में स्वतन्त्र शिक्षा व्यवस्था का यह दायित्व बनता है कि इस अभागे वर्ग को यथोचित ज्ञान एवं कौशल उनके ही व्यवसाय में, उनकी ही समय सीमा में, उनके ही कार्यस्थल पर उपलब्ध कराया जाये, ताकि उनके कौशल को परिष्कृत कर उसमें विविधता लाकर उनकी आय वृद्धि, आत्मविश्वास में बढ़ोतरी तथा कार्यक्षेत्र में बेहतर समायोजन सुनिश्चित किया जा सके। शिक्षा की इस जीवन्त समस्या को जनशक्ति विकास की एक शैक्षिक योजना के रूप में देखना होगा, क्योंकि युवक–युवतियों का यही अकुशल कार्यबल कालान्तर में अंसगठित क्षेत्र में विशाल कार्यबल का रूप ले लेता है। साथ ही शिक्षा व्यवस्था को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि भविष्य में कोई भी छात्र बिना वांछित कुशलता अर्जित किये कार्यजगत में प्रवेश न करे। शिक्षा

मानव–विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला–कौशल में वृद्धि, तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है, और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। अर्थात् शिक्षा द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक को जागृत करता है और वह एक विवेकशील प्राणी बनता है। हमारे देश में शिक्षा का स्थान सदैव ही उच्च रहा है। किसी ने शिक्षा को व्यक्तित्व का चहुंमुखी विकास बताया है, तो किसी ने शिक्षा को मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा। किसी ने कहा कि शिक्षा से ही मुक्ति सम्भव है, तो किसी ने माना है कि बिना शिक्षा के मनुष्य पशु समान होता है। वैदिक से लेकर आधुनिक काल तक यदि नज़र डाली जाये तो पता चलता है कि प्रत्येक युग में शिक्षा का एक अलग महत्व रहा है। पर विडम्बना की बात यह है कि आज इक्कीसवीं सदी में जहां एक ओर दुनिया चांद पर पहुंच गई है, वहीं हम अभी तक अपने देश में सभी नागरिकों को सामान्य साक्षर बनाने का कार्य भी पूर्ण नहीं कर सके हैं। अनेकों योजनाएं इस कार्य को पूर्ण करने के लिए चलाई गई हैं। सम्पूर्ण साक्षरता अभियान उन्हीं में से एक है।''[3]

महिलाओं के प्रति उपेक्षा और भेदभाव की कुरीति को एक दिन में ही नहीं बदला जा सकता, लेकिन नागरिक समाज के सहयोग से सरकार की देश भर में शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए बड़ी सावधानीपूर्वक बनाई गई योजनाओं से महिलाओं का सशक्तिकरण अवश्य हो सकेगा। इससे उनमें आत्म–जागृति उत्पन्न होगी और वे घर व बाहर निर्णय प्रक्रिया में भाग ले सकेंगी। इससे उनके कौशल का विकास भी होगा और वे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनेंगी। तब वे परिवार खर्च में भी हाथ बंटा सकेंगी, बच्चों के लिए आदर्श बन सकेंगी। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए जरूरी है कि पुरूष भी उनमें भागीदारी व सहयोग करें, क्योंकि शिक्षित माताओं, पत्नियों, पुत्रियों और बहनों से उन्हें भी फायदा पहुंचता है। हम इस मामले में दुनिया से पीछे हैं। हमें उनके बराबर आना होगा। यह उस पारम्परिक सोच को बदलने से ही सम्भव है, जो महिलाओं को समाज में द्वितीयक दर्जा प्रदान करती है।''[4]

महिला–शिक्षा की उपयोगिता :

महिलाओं के जीवन में शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बच्चों के पालन–पोषण, उनकी शिक्षा, परिवार कल्याण, जनसंख्या वृद्धि तथा विकास के सभी पहलुओं में इसकी उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है। शिक्षित महिलायें देश के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। शिक्षा के द्वारा महिलाओं में उनके विरूद्ध जो सामाजिक बुराइयां, जैसे– बाल विवाह, अंधविश्वास, सती प्रथा, दहेज प्रथा, महिला शोषण आदि फैली हुई हैं, उनको समाप्त करने की शक्ति उत्पन्न होती है। किन्तु भारतीय समाज में शैक्षिक स्थिति का अवलोकन करते हैं, तो बहुत दुख होता है कि हमारे देश की महिला शिक्षा की दशा अत्यन्त दयनीय है। जैसा कि ''राष्ट्रीय साक्षरता मिशन (2005) के द्वारा निम्न महिला साक्षरता दर वाले 45 जिलों का अध्ययन करने के पश्चात् ज्ञात हुआ कि इन जिलों में महिला साक्षरता दर 30 प्रतिशत से भी कम है। इसलिए इस निम्न साक्षरता से निपटना राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के लिए चिंता का विषय है।''[5]

भारत में परम्परागत तथा रूढ़िवादी समाज में भी महिला शिक्षा को अनावश्यक समझा जाता रहा है, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान में भी महिला शिक्षा की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। कोई भी समाज तब तक सच्चे अर्थो में शिक्षित नहीं हो सकता, जब तक उस समाज की महिलायें शिक्षित नहीं हो जातीं। जनगणना 2001 के आंकड़ों के अनुसार देश में महिला साक्षरता दर पुरूष साक्षरता दर से 21.68 प्रतिशत क्रम थी। भारत में सर्वाधिक (75.85) महिला साक्षरता दर केरल तथा मिजोरम में क्रमशः 87.86 प्रतिशत तथा 86.13 प्रतिशत थी।

इसके अतिरिक्त लक्षद्वीप (81.56 प्रतिशत), गोवा (75.51 प्रतिशत), तथा दिल्ली (75.00 प्रतिशत) में भी साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक थी। जबकि सबसे कम महिला साक्षरता दर बिहार में 33.57 प्रतिशत, झारखंड में 31.38 प्रतिशत तथा जम्मू कश्मीर में 41.82 प्रतिशत थी। हिन्दी क्षेत्र के अधिकांश राज्यों– छत्तीसगढ़ में 52.40 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 50.28 प्रतिशत, राजस्थान में 44.34 प्रतिशत तथा उ0प्र0 में 42.98 प्रतिशत की महिला साक्षरता दर राष्ट्रीय महिला साक्षरता दर से निम्न रही है। इसी निम्न साक्षरता दर के कारण हिन्दी क्षेत्र के इन राज्यों में स्वास्थ्य तथा जनसंख्या जैसे क्षेत्रों की स्थिति काफी निराशाजनक है। उपरोक्त आंकड़ों का अवलोकन करने से पता चलता है कि देश में महिलाओं ने समान संवैधानिक अधिकार तो प्राप्त कर लिये हैं, लेकिन व्यावहारिक तौर पर देश के अनेक भागों में महिलायें उनका उचित उपयोग नहीं कर पा रही हैं। महिला अशिक्षा इस क्षेत्र में एक बड़ी बाधा है। यदि महिलायें पर्याप्त साक्षर तथा प्रबुद्ध होती हैं, तो वे अपने अधिकारों का सदुपयोग बेहतर ढंग से कर सकती हैं। तथा भारतीय समाज को एक नवीन दिशा भी प्रदान कर सकती हैं।''[6]

मुस्लिम समुदाय में महिला–शिक्षा :

यदि मुस्लिम महिलाओं की शैक्षिक स्थिति को पृथक् से देखा जाये, तो पता चलता है कि उनकी साक्षरता की स्थिति और भी निम्न है। जबकि इस्लाम तथा कुरआन के अनुसार, मुस्लिम माता–पिता को अपनी पुत्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के आवश्यकता है। इस्लाम पुरूष और महिला में भेद नहीं करता है। अल्लाह की नज़र में पुरूष तथा महिला को बराबरी का दर्जा हासिल है। मुस्लिम माता–पिता की पहली आवश्यकता है कि वे अपनी पुत्रियों की शिक्षा के महत्व को समझें तथा अपनी पुत्रियों को ज्ञान प्राप्त करायें, क्योंकि महिला–शिक्षा पुरूष–शिक्षा की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। पैगम्बर मौहम्मद साहब ने कितना सही कहा था कि, ''जब कोई किसी पुरूष को शिक्षित करता है, तो वह केवल एक ही व्यक्ति को शिक्षित कर पाता है, परन्तु इसके विपरीत एक महिला को शिक्षित करके वह एक राष्ट्र को शिक्षित करता है।

मुस्लिम महिलाओं में शिक्षा की आवश्यकता इसलिए भी है, ताकि उनका ध्यान चारों ओर वाद–विवाद तथा उत्तेजक विषयों की ओर आकर्षित हो सके। ''शरीअत कानून'' के विभिन्न पहलुओं तथा महिला व बालिका शिक्षा को पहचान सके, तथा इस्लाम की शिक्षा को ठीक ढंग से समझ सके। पैगम्बर मौहम्मद साहब ने शिक्षा की महत्ता को महिला तथा पुरूष दोनों के ही लिए बराबर बताया है, परन्तु अधिकतम मुस्लिम महिलायें इस्लाम की शिक्षा से अनभिज्ञ होने के कारण अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाती हैं। यह अति आवश्यक है कि महिलाओं को इस्लाम के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। इस्लाम के पैगम्बर महिलाओं के प्रति समाज में तलाक तथा गैर जरूरी पाबन्दियों जैसी बुराईयों को समाप्त करके महिलाओं का उत्थान करना चाहते थे। वे चाहते थे कि महिला शिक्षा भी पुरूष शिक्षा के समान हो, इसके बिना समाज की उन्नति में समस्या उन्पन्न हो सकती है।''[7]

मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा के प्रसार के लिए सर्वप्रथम शेख अब्दुल्ला ने यह प्रस्ताव रखा कि महिलाओं की शिक्षा के लिए स्कूल स्थापित होने चाहिए। उनके प्रयासों के द्वारा सन् 1907 ई0 में बालिकाओं के लिए एक स्कूल स्थापित किया गया, जो आज आवासीय संस्था के रूप में महिला शिक्षा के लिए स्थापित है। 4000 से भी अधिक बालिकाएं प्राथमिक कक्षाओं से लेकर उच्च स्तर तक यहां शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। शेख अब्दुल्ला ने युवा पीढ़ी में इस्लाम की जड़ें मजबूत कीं। उस समय उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से वकालत की उपाधि प्राप्त की थी। वर्ष 1902 में दिल्ली में मौहम्मड़न शिक्षा कान्फ्रेन्स में एक सभा

में उन्हें महिला शिक्षा कॉन्फ्रेन्स का सैकेट्री नियुक्त किया गया। वर्ष 1906 में कॉन्फ्रेन्स के निर्देशकों के अनुसार उन्होंने और उनकी पत्नी ने ''अलीगढ़ गर्ल्स स्कूल'' की स्थापना की। उन्हें कुरआन और उर्दू के अतिरिक्त गणित और गृह कार्य संभालने की भी शिक्षा दी जाती थी। शीघ्र ही इस स्कूल में बॉर्डिंग व्यवस्था कर दी गई। भारत के विभिन्न भागों से मुस्लिम बालिकायें यहां आती थीं और पर्दे में रहकर अध्ययन करती थीं। वर्ष 1925 तक यह स्कूल सफलता में सबसे आगे गिना जाने लगा। यह एक इण्टरमीडिएट कॉलिज हो गया। वर्ष 1937 में यहां पर स्नातक कक्षायें आरम्भ हो गईं और अब यह ''अलीगढ़ मुस्लिम कॉलिज'' के नाम से अच्छी तरह जाना जाता है।

वर्ष 1947 से देश के विभाजन के पश्चात् से शिक्षा में लगातार वृद्धि हो रही है। भारतीय मुसलमानों की शिक्षा में भी विस्तार हो रहा है। परन्तु इतिहास के अनुसार यहां की महिलाओं के लिए शिक्षा की बहुत आवश्यकता है, ताकि मुस्लिम महिलायें शिक्षा प्राप्त करके मानवीय विचारों में परिवर्तन ला सकें।''[8]

बेगम (1999) ने इस्लामिक शिक्षा के अध्ययन में पाया कि इस्लाम पुरूष तथा महिला दोनों को ही समान शिक्षा का समर्थक है। महिलाओं को भी इस्लाम में पुरूषों के बराबर अधिकार प्राप्त हैं। यदि दोनों जीवन साथी शिक्षित होंगे, तो जीवन का आनंद भी अधिक होगा। शिक्षित महिला पत्नी, मां तथा एक अच्छे नागरिक के रूप में अपनी भूमिका का उचित निर्वहन कर सकती है। एक हदीस के अनुसार, ''पालने से लेकर कब्र तक ज्ञान प्राप्त करो।''[9]

अबीदी के कुरआन के अध्ययन से पता चलता है कि कुरआन में सूरा अलशूरा में कहा गया है कि, ''हमने तुम सभी पुरूष और महिलाओं को एक ही जोड़े से पैदा किया है, और तुम्हें संसार में एक दूसरे के साथ मिलकर रहने और समझने के लिए भेजा है, पुरूष तथा महिलाओं में भेद करने के लिए नही।''[10]

गौसी ने इस्लाम के अध्ययन के पश्चात् पाया कि इस्लामिक दृष्टि से प्रत्येक पुरूष तथा महिला के लिए ज्ञान एवं शिक्षा अति आवश्यक है। शिक्षा के बिना व्यक्ति अपनी पहचान तथा अपनी उच्च स्थिति के प्रति अनभिज्ञ रहता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपने को प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने पर गर्व महसूस कर सकता है। शिक्षा के अभाव में जटिल समाज में व्यक्ति बहुत पीछे रह जाता है। यह एक महत्वपूर्ण सत्य है कि पुरूषों की शिक्षा में भी महिलाओं की विशेष भूमिका होती है, क्योंकि मां की गोद ही बच्चे की सर्वप्रथम पाठशाला होती है।''[11]

इंजीनियर (2003) के अनुसार इस्लाम की पवित्र पुस्तक कुरआन में पुरूष तथा महिला दोनों को ही समान अधिकार प्रदान किये गये हैं। जो लोग इस्लाम में दृढ़ता से विश्वास करते हैं, उन्हें यह सोचना चाहिए कि महिलाओं को भी समान अधिकार प्रदान किये जायें। इस्लाम के अन्तर्गत महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति सोचने का हक है, परन्तु वे स्वतन्त्र रहकर कोई कार्य नहीं कर सकतीं। मलेशिया में मुस्लिम महिलाओं का संगठन बिल्कुल बहनों के समान है। ये महिलायें अपने स्त्रीत्व को विकसित कर रही हैं, ताकि उनको भी पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त हो सकें। मलेशिया की महिलायें तो उलेमाओं के कट्टरपन को भी चुनौती दे रही हैं।

अली महिला–शिक्षा के लिए कुरआन से सम्बन्धित विशेष बातों पर ज़ोर देते हैं। वे कहते हैं कि मुस्लिम पुरूष व महिला दोनों को ही ज्ञान की खोज करनी चाहिए। पुरूष अपने आप को महिला से श्रेष्ठ समझकर गलती करता है। वह दूसरी गलती तब करता है, जब वह यह समझता है कि महिलायें बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करने में अयोग्य हैं। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में उनका शोषण किया जाता है। बहुत से लोग कहते हैं कि महिला को इतना जानना चाहिये कि उसे नमाज़ किस

प्रकार अदा करनी है, भोजन कैसे बनाना है, सिलाई कैसे करनी है और बच्चों की देखभाल कैसे करनी है, यही काफी है। परन्तु ऐसा करके उनका शोषण ही किया जाता है। महिला–शिक्षा वास्तविक होनी चाहिए। मुस्लिम परिवार और सम्पूर्ण मुस्लिम सभ्यता के लिए महिला–शिक्षा बहुत आवश्यक है।''[12]

वाही (1999) ने मुस्लिम समुदाय की शिक्षा का अध्ययन करने के पश्चात् बताया कि देश में सर्वप्रथम सर सैयद अहमद खां ने मुस्लिम समुदाय की आधुनिक पश्चिमी शिक्षा पर प्रकाश डाला है। उन्होंने ''मौहम्मडन एंग्लो ओरिएण्टल कॉलिज'' की स्थापना की। ''अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय'' की स्थापना करके उन्होंने मुस्लिम समुदाय को एक बहुत बड़ी उपलब्धि प्रदान की है।''[13]

बदलते परिवेश में मुस्लिम महिला–शिक्षा :

सिकन्द (1998) ने बताया कि मुस्लिम महिला–शिक्षा दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मुस्लिम समुदाय शिक्षा के क्षेत्र में धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा है। स्कूलों के अंदर मुस्लिम समुदाय का नामांकन प्रतिशत तेजी से आगे बढ़ रहा है। परन्तु अभी भी 50 प्रतिशत मुस्लिम बालिकाओं को हायर सैकेण्ड्री से पहले ही रोक दिया जाता है। 10 प्रतिशत बालिकायें ग्रेजुएशन में प्रवेश करती हैं, तथा 5 प्रतिशत एम0ए0 में रह जाती हैं।''[14]

अली (2003) के अनुसार, मुस्लिम महिलायें भी अब बदलते विश्व के साथ–साथ थोड़ा परिवर्तन ला रही हैं। वे इस बात का प्रयास कर रही हैं कि संसार के साथ उन्हें भी परिवर्तित होना चाहिए। वे आधुनिक समाज में परिवर्तित हो रही हैं। सऊदी अरब में महिलायें आधुनिक शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। राजकुमारी अब्दुल अज़ीज कहती हैं कि हमारी महिलाओं की शिक्षा के लिए अलग संस्थायें होनी चाहियें। यह शिक्षा सहयोगी होनी चाहिए। सऊदी महिलायें मिश्रित इच्छाओं का सामना कर रही हैं। मुस्लिम महिलायें दुनिया में परिवर्तन से होकर गुज़र रही हैं। कट्टर उलेमाओं को उन्हें आगे बढ़ने से नहीं रोकना चाहिये। अधिकांश मुस्लिम महिलायें या तो मध्यकालीन चुनौतियों का सामना कर रही हैं या फिर वे उन कुरीतियों से अन्जान हैं, जो उन्हें आधुनिकता में प्रवेश नहीं करने देती हैं। वे एक नई दुनिया में प्रवेश करना चाहती हैं।''[15]

मुस्लिम महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रयासों की आवश्यकता है।

प्रिंसेज (1998) के अनुसार, हमें गम्भीरतापूर्वक स्त्रीत्व की उन बातों पर विचार करना चाहिए, जिनके लिए हमारे नेता लोग दलीलें देते हैं, परन्तु वे कुछ करने नहीं पाते। सरकार को महिला शिक्षा के प्रति समाज की ओर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है।

इस्लाम कहता है कि महिलाओं को शिक्षा सुविधा दी जानी चाहिए, परन्तु हमारा समाज कुछ स्तर तक मुस्लिम महिलाओं का शिक्षा के क्षेत्र में शोषण कर रहा है। समाज को भी बालिकाओं को शिक्षा–प्राप्ति में स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिए।''[16] सहरतुन्निसा (1998) ने कहा कि आधुनिकतावाद या जो आज की आवश्यकता है, वह सभी प्रकार की शाखाओं का ज्ञान प्राप्त करने की है। यह महिला तथा पुरूष दोनों के लिए आवश्यक है। इस्लाम की दृष्टि में आधुनकितावाद को अपनाया जाना चाहिए। देश के अन्दर मुस्लिम बाहुल्य जनसंख्या को शिक्षा के सभी साधनों का प्रयोग करना चाहिए। विशेष रूप से मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा को ऊपर उठाने की आवश्यकता है, तथा अंधविश्वासों को तेजी से समाप्त करना चाहिए। इस्लाम में लिंग के आधार पर किसी भी मानव प्राणी में शक्ति तथा धन के आधार पर अन्तर नहीं किया जाता है, परन्तु मुस्लिम महिलायें अपने अधिकारों को समझ नहीं पाती हैं। इसका मुख्य कारण उन्हें इस्लाम के बारे में वास्तविक स्तर की अज्ञानता है। उन्हें अपने अधिकार और उत्तरदायित्व जानने की अत्यन्त आवश्यकता है। मुस्लिम महिलाओं को सरकार के द्वारा शिक्षा के प्रति दिये गये अवसरों का लाभ उठाना चाहिए।

अल्पसंख्यकों की शिक्षा के प्रति सहानुभूति रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति का अवलोकन करना चाहिए। मुस्लिम समुदाय शिक्षा के रूप में पिछड़े हैं। उनकी शिक्षा के प्रति ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है। मुस्लिम महिलाओं की निरक्षरता को दूर करने के लिए उदार नीतियां बनाने की आवयकता है। यह समझना चाहिए कि मुस्लिम महिला शिक्षा वर्तमान और भविष्य में एक अद्वितीय विनियोग होगा, जिससे समुदाय और राष्ट्र का विकास होगा।''[17]

आयशा (1999) ने इस्लामिक अध्ययन के द्वारा महिला–शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कहा है कि माता–पिता को बालक तथा बालिका शिक्षा में पक्षपात न करके, दोनों की शिक्षा को महत्वपूर्ण समझना चाहिये। उलेमाओं को चाहिये कि वे इस्लामिक शिक्षा के साथ–साथ मुसलमानों की आधुनिक शिक्षा के प्रति भी प्रेरित करें, क्योकि मुसलमान मौलवियों, उलेमाओं की बातों को बहुत मानते हैं। मदरसों में धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ आधुनिक शिक्षा का प्रावधान होना चाहिये। पुरूषों को महिलाओं के प्रति अपना व्यवहार बदलना चाहिये तथा महिलाओं को भी शिक्षा के लिए आगे आना चाहिए। महिलाओं के लिए अलग से शिक्षण संस्थान होने चाहियें।''[18]

उपसंहार :

कलाम (2005) ने 58 वें स्वतन्त्रता दिवस, 2004 की पूर्व संध्या पर राष्ट्र के नाम संदेश में कहा कि शिक्षा वास्तविक अर्थों में सत्य की खोज है। यह ज्ञान और प्रकाश की अंतहीन यात्रा है। ऐसी यात्रा मानवतावाद् के विकास के लिए ऐसे नये रास्ते खोलती है, जहां ईर्ष्या, घृणा, शत्रुता, संकीर्णता और वैमनस्य का कोई स्थान न हो। यह मनुष्य को सम्पूर्ण, श्रेष्ठ, नेक इंसान और विश्व के लिए एक उपयोगी व्यक्ति बनाती है। सही मायनों में विश्वबंधुत्व ऐसी शिक्षा के लिए ढाल बन जाता है। यथार्थपरक शिक्षा मनुष्य की गरिमा और आत्मसम्मान को बढ़ाती है। यदि शिक्षा की यथार्थता को प्रत्येक व्यक्ति समझ ले और मानवीय गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में उसे अपना ले, तो रहने के लिए विश्व और भी बेहतर स्थान बन जायेगा। किसी भी राष्ट्र के विकास और समृद्धि के लिए सबसे जरूरी तत्व शिक्षा है। भारत 2020 तक एक विकसित राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है। परन्तु अभी हमारे देश में ऐसे 30 करोड़ 50 लाख लोग हैं, जिन्हें साक्षर बनाने की जरूरत है।''[19]

: संदर्भ सूची :

1. हारून, मोहम्मद (2003), ''प्राथमिक शिक्षा : प्रयास और परिणाम'' कुरूक्षेत्र, सितम्बर, पृ. 11
2. खरे, ऋषिका (2002), ''एक जंग शिक्षा के नाम'' योजना, जुलाई, पृ0 20
3. आज़ाद, राकेश कुमार (2005) ''सम्पूर्ण साक्षरता अभियान का सामाजिक परिदृश्य'' राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, जनवरी–जून, पृ0 61–62
4. जयन्ती, सी0 (2001), ''साक्षरता एक आवश्यक शर्त'' योजना, अगस्त, पृ0 11–14
5. अबीदी, अज़रा– ''एजूकेशन ऑफ मुस्लिम गर्ल्स एण्ड सोशल इनइक्वेलिटी'', ए सोशोलोजिकल एनालाइसिस ऑफ द प्राब्लम, पृ0 7–9
6. शर्मा, मुकेश कुमार (2004), ''भारत में महिला साक्षरता की स्थिति'' कुरूक्षेत्र, सितम्बर, पृ0 24–25
7. अबीदी, अज़रा, ''एजूकेशन आफॅ मुस्लिम गर्ल्स एण्ड सोशल इनइक्वेलिटी'' ए सोशोलोजिकल एनालाइसिस ऑफ द प्राब्लम, पृ0 7–9
8. सिकन्द योगिन्दर, ''मुस्लिम वूमेन्स एजूकेशन एण्ड सोशल रिफॉर्म'' IV
9. बेगम, शाहीन (1999), ''व्हाई दिस जैण्डर डिस्क्रिमीनेशन?''मुस्लिम एजूकेशन रिव्यू, अक्टूबर, पृ0 17

10. अबीदी, अज़रा, ''एजूकेशन ऑफ मुस्लिम गर्ल्स एण्ड सोशल इन्इक्वेलिटी'' जैण्डर एज़ ए बेसिस ऑफ सोशल इन्इक्वेलिटी, पृ0 6, कुरआन, 26:13
11. गौसी, सैयद जियाउर्रहमान– ''एजूकेशन्स बैकवर्डनैस ऑफ गर्ल्स : ए मोमेण्ट ऑफ थॉट''
12. अली, मुमताज, ''वूमेन्स एजूकेशन'', मुस्लिम वूमेन एण्ड लॉ, पृ0 45
13. बाही, गौतम (1999), ''मुस्लिम एजूकेशन इन द नेशनल पर्सपैक्टिव'', मुस्लिम एजूकेशन रिव्यू, अक्टूबर, पृ0 32
14. सिकन्दर योगिन्द (1998), ''मुस्लिम इम्प्रूवमैण्ट'' न्यू स्ट्रिंग्स
15. इंजीनियर असगर अली, (जुलाई 2003) ''मुस्लिम वूमेन ऑन द मूव''– सैक्यूलर पर्सपैक्टिव
16. सर्वथ, प्रिसेंज (1998) ''एजूकेशन ऑफ वूमेन इन द मुस्लिम वर्ल्ड'', रीजनल कल्चर
17. सहरतुन्निसा (1998), ''वूमेन्स एजूकेशन इस एन ऑबलीगेशन'', मुस्लिम वूमैन इन इण्डिया सिंस इण्डिपैन्डैंस, पृ0 83–84
18. आयशा, रजीना (1999), ''इस्लाम इमेन्सीपेट्स वूमेन फ्राम इग्नोरैन्स'', मुस्लिम एजूकेशन रिव्यू, अक्टूबर, पृ0 15
19. अब्दुल कलाम ए0पी0जे0 (2005) – ''सम्मान के लिए शिक्षा'', योजना, सितम्बर, पृ0 5–7

Samaj Vigyan Shodh Patrika

Vol. 2 No. XXXX (2017-18)
ISSN 0973-7626
RNI: UPBIL/2005/16107
OCTOBER 2017 - MARCH 2018

भारतीय जीवन बीमा निगम के व्यवसाय में ग्राहक सेवा एवं बीमा एजेंटों की भूमिका

चंचल कुमार
ए–12, आदर्श नगर
नजीबाबाद, जि0– बिजनौर, (उ.प्र.)–246763

डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग
साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद (उ.प्र.)–246763

भारतीय जीवन बीमा निगम, विश्व का सबसे बड़ा एवं अग्रणी सार्वजनिक वित्तीय संस्थान है। जीवन बीमा वर्ष 1818 में अपने आधुनिक रूप के साथ इंग्लैंड से भारत लाया गया। द इंश्योरेंस एक्ट 1938 पहला ऐसा कानून था, जो न केवल जीवन बीमा बल्कि गैर–जीवन बीमा पर भी कानूनी पकड़ बनाता था। भारत में राष्ट्रीयकरण के समय 245 जीवन बीमा कंपनी काम कर रही थीं। भारतीय संसद ने 19 जून, 1956 को जीवन बीमा निगम अधिनियम सर्वसम्मति से पारित किया था तथा 1 सितंबर 1956 को भारतीय जीवन बीमा निगम (एलआईसी) की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य जीवन बीमा का अधिक व्यापक रूप से प्रसार करना था, खासतौर से ग्रामीण आबादी तक। एलआईसी ने सही मायने में कई मील के पत्थर पार किए हैं और जीवनबीमा के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता हासिल की है। एलआईसी 250 मिलियन से अधिक लोगों का भरोसा है। यह एक विविध वैश्विक कंपनी है, जो आपको अपने पसंदीदा क्षेत्र में ध्यान केंद्रित करने या कुछ नया करने का मौका देती है।

भारत में तकरीबन 35 करोड़ बीमा योग्य जनसंख्या है, किंतु अभी तक इसका मात्र पांचवां हिस्सा ही भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा अधिगृहीत हो पाया है। विदेशी बीमा कंपनियां भी भारतीय बीमा बाजार में प्रवेश कर चुकी हैं। उदारीकरण और वैश्वीकरण की अर्थव्यवस्था को विश्व के अधिकांश देशों ने स्वीकार कर लिया है। आज संचार के माध्यम से ग्राहकों को आवश्यक, पर्याप्त एवं आर्थिक सूचनाएं प्राप्त हो रही हैं। इस समय निगम ने अनेक आकर्षक उत्पाद एवं वित्तीय योजनाएं बाजार में ग्राहक हेतु उतार रखी हैं। निगम को आज निजीकरण की अवधारणा लागू होने से बाजार में कड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है, इससे इसके दायित्वों में लगातार वृद्धि हो रही है और चुनौतियों का मुकाबला भारतीय जीवन बीमा निगम अपने सुयोग्य, सक्षम, ईमानदार एवं कर्मठ अभिकर्ताओं एवं विकास अधिकारियों के माध्यम से कर रहा है। व्यावसायिक अभिकर्ता भी बीमाधारक को ग्राहक सेवा शीघ्रता, सुगमता एवं मितव्ययता से निष्पादित करने में प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं।[1]

विगत कुछ वर्षों से हमारे देश की अर्थव्यवस्था में उदारीकरण की अवधारणा का प्रादुर्भाव हो गया है, जिससे हमारी नियंत्रित अर्थव्यवस्था में खुलापन आया है। चारों ओर बाजार में उत्साह का संचार हो रहा है। वित्तीय क्षेत्रों में उद्योगों के लिए जहां नए–नए स्रोत खुल

रहे हैं, वहीं ग्राहकों में भी नई चेतना का संचार हुआ है। भारतीय जीवन बीमा निगम 1956 से आज तक 60 वर्षों का एक लंबा सफर तय कर चुका है। 1957 में भारतीय जीवन बीमा निगम की मात्र 240 शाखाएं समस्त भारत में थीं, वहीं आज शाखाओं में तीव्रता से वृद्धि होकर इनकी संख्या 2048 हो गई है और जोन की संख्या में वृद्धि कर 7 के स्थान पर 8 कर दिए गए हैं। पॉलिसी धारकों का परिवार, जो 1957 में मात्र 56 लाख के करीब था, वह वर्तमान में बढ़कर लगभग 29.03 करोड़ हो गया है, जिन्हें निगम की विभिन्न शाखाओं से कंप्यूटरीकृत त्वरित सेवा प्रदान की जा रही है। भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा प्रीमियम की राशियों का विभिन्न क्षेत्रों में निवेश किया गया है, जिससे देश की आर्थिक प्रगति एवं रोजगार के अवसर को सकारात्मक रूख प्राप्त हुआ है। आम आदमी का जीवन स्तर ऊंचा उठाने के उद्देश्य से निगम ने समाजोन्मुख एवं मूलभूत ढांचे में निवेशों को प्राथमिकता दी है, जिसके अंतर्गत 31 मार्च, 2016 तक 2109253 करोड़ रुपए का निवेश किया जा चुका है। वर्ष 1957 में 88 करोड़ रुपए प्रीमियम के मुकाबले वित्तीय वर्ष 1015–16 में 32838 करोड़ रुपए का प्रीमियम अर्जित किया है, जो स्वयं में एक कीर्तिमान है। पूरे संसार में केवल चार गणराज्य चीन, भारत, यूएसए एवं इंडोनेशिया ऐसे हैं, जिनकी जनसंख्या निगम की कुल बीमा पॉलिसियों से अधिक है। भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा अपने ग्राहकों को बीमा प्रीमियम किसी भी बैंक की शाखा में जमा करने की छूट प्रदान की गई है तथा सभी बैंकों के एटीएम, इंटरनेट बैंकिंग द्वारा भी बीमा प्रीमियम जमा करने की छूट दी गई है, साथ ही चेयरमैन क्लब सदस्य अभिकर्ताओं के लिए रिन्यूअल प्रीमियम संग्रह केंद्र खोले गए हैं, जो छुट्टी के दिन भी प्रीमियम प्राप्त कर ग्राहक को रसीद दे सकते हैं। जीवन बीमा निगम द्वारा सभी फाइलें अपनी साईट पर डाली जा रही हैं। उससे ग्राहक किसी भी शाखा में अपना प्रीमियम जमा कर सकता है और कोई भी जानकारी हासिल कर सकता है। निगम द्वारा विकास अधिकारी के साथ–साथ अपने क्षेत्र विस्तार के लिए क्लब जीएम, जैडएम, डीएम तक के अभिकर्ताओं को अपने निर्देशन में नए एजेंट भर्ती करने की भी छूट प्रदान की गई है। भारतीय जीवन बीमा निगम की रणनीति रही है कि वह अपने बीमा ग्राहकों के नजदीक तक पहुंचे, जिस हेतु समूचे देश में सैटेलाइट कार्यालय ग्रामीण क्षेत्रों में खोले गए हैं, जिसमें 3 लोगों का स्टाफ होता है और बीमा संबंधी सामान्य कार्य देखे जाते हैं। निगम को ब्रांड इक्विटी सर्वे के अनुसार लगातार पांच वर्षों से भारत का नंबर वन सर्विस ब्रांड माना गया है। निगम देश की द्वितीय सबसे बड़ी कम्प्यूटर प्रयोग करने वाली संस्था है। भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा 2016 में कुल दर्ज दावों में से 96.94 प्रतिशत दावों का निस्तारण कर 100548.89 करोड़ रुपए का भुगतान किया गया। बिना भुगतान वाले दावों में अधिकांश मृत्यु दावे थे, जिसके संबंध में महत्वपूर्ण तथ्य छिपाए गए थे। अतः निगम प्रत्येक सैकेंड में दो दावों का भुगतान करती है। जहां तक बीमा कंपनियों के लाभ का प्रश्न है, भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा 49940 करोड़ रुपए का लाभ दर्शाया गया है। एलआईसी ने बीमा क्षेत्र के उदारीकरण के पश्चात् भी काफी उल्लेखनीय कार्य प्रदर्शन किया है। 2015–16 में पॉलिसियों में 77 प्रतिशत और प्रथम वर्ष प्रीमियम में 70 प्रतिशत बाजार हिस्से को बनाए रखा। आज प्रतिस्पर्धात्मक परिवेश तथा सुधार के बीच बीमा क्षेत्र में काफी अधिक केंद्रीकरण हो रहा है। स्थिर मुद्रा स्फीति और गिरती ब्याज दरों के साथ आर्थिक वातावरण में पैठ के विस्तार से परिणत होगा और एक महत्वपूर्ण हिस्सेदारी होगी। जीवन बीमा व्यवसाय एकाधिकार के प्रारंभिक दिनों से लेकर आज तक अकल्पित रूप से ग्राहक केंद्र रहा है। वर्ष 2015–16 के दौरान 99.35 परिपक्वता दावों और 99.75 मृत्यु दावों का निपटारा किया है। ग्राहक सेवा में सुधार

हेतु अपने प्रयास में ग्राहकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए नई पहल कर रहे हैं। आज ग्राहक एलआईसी की ई–सेवा ऑनलाईन प्राप्त कर सकता है। वह एसएमएस आधारित हेल्पलाईन के माध्यम से अपने सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर सकता है। वह नेट बैंकिंग, क्रेडिट–डेबिट कार्डों अथवा वॉलेट के जरिए भी प्रीमियमों का ऑनलाईन भुगतान कर सकता है। वह विभिन्न उत्पादों एवं सेवाओं की जानकारी प्राप्त करने और प्रीमियम का भुगतान करने के लिए भी एलआईसी के 'मोबाईल एप' का उपयोग कर सकता है। सभी दावे तथा अन्य भुगतान नेफ्ट के माध्यम से ग्राहकों के बैंक खाते में सीधे जमा किये जा रहे हैं। सोशल मीडिया में एलआईसी फोरएवर से एलआईसी की उपस्थिति है और आज की तिथि में फेसबुक पर फैनबेस 57 लाख से भी अधिक है। एलआईसी शिकायत निवारण में नए मानक स्थापित करने में सक्षम है। भारतीय जीवन बीमा निगम ने विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से, मानव संसाधन विकास पर भी अपना ध्यान केंद्रित किया है। वर्ष के दौरान विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अंतर्गत 37,197 कर्मचारी एवं 1,96,593 अभिकर्ताओं को प्रशिक्षित किया गया है। बीमा उद्योग और अन्य ऐसी संस्थाओं द्वारा लगातार कई वर्ष अनेक पुरस्कार प्राप्त किये हैं, जिन्होंने सेवा, उत्पाद नवीनता, मानव संसाधन प्रथाओं, आम जनता तक बीमे की व्याप्ती, सामाजिक सुरक्षा फोकस, सीएसआर गतिविधियों के क्षेत्र में तथा सबसे विश्वसनीय ब्रैंड के रूप में कार्य किया है। वर्तमान में भारतीय जीवन बीमा निगम की शाखाओं में लगभग 1061560 व्यक्ति अभिकर्ताओं के रूप में कार्यरत हैं। अभिकर्ता ही जीवन बीमा व्यवसाय का एक अभिन्न अंग है। यद्यपि जीवन बीमा व्यवसाय को समुत्पन्न करने के उद्देश्य से पॉलिसी विक्रय हेतु नए–नए चैनलों का अन्वेषण किया जाता रहा है, परंतु अभिकर्ता की भूमिका आज भी यथावत बनी हुई है। जीवन बीमा का अधिकांश व्यवसाय आज भी अभिकर्ताओं द्वारा संपन्न किया जा रहा है। भारतीय जीवन बीमा निगम की प्रगति को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।[2]

तालिका– **भारतीय जीवन बीमा निगम की प्रगति**

क्रम	विवरण		1956	1966	1976	1986	1996	2006	2016
1	कुल व्यवसाय	पॉलिसी	–	166 लाख	197 लाख	280 लाख	710 लाख	1865 लाख	2792 लाख
		प्रीमियम	–	4394 करोड़	16869 करोड़	40617 करोड़	–	79600 करोड़	178784 करोड़
2	कुल परिसम्पत्ति		–	–	3613 करोड़	13121 करोड़	75950 करोड़	–	–
3	कुल प्रीमियम की आय		–	225 करोड़	588 करोड़	403.11 करोड़	14182 करोड़	15783 करोड़	32838 करोड़
4	दावों का भुगतान	दावे		–	5.46 लाख	13.83 लाख	41.67 लाख	120.85 लाख	–
		राशि		57.72 करोड़	165.85 करोड़	728.80 करोड़	4532 करोड़	28473 करोड़	100548.89 करोड़
5	शाखाओं की संख्या		181	401	659	1197	2024	2048	2048
	क्षेत्रीय कार्यालय		–	–	43	43	100	101	113
6	कुल कर्मियों की संख्या		–	51516	57409	66475	125736	113184	114773
7	ऐजेंटों की संख्या		21900	170580	155153	172542	537117	105223	1061560
8	कुल विनियोग		–	963 करोड	3052 करोड़	12264 करोड़	68276 करोड़	524017 करोड़	2109253 करोड़
9	अधिक्य			62 करोड़	181.50 करोड़	1054.90 करोड़	3219 करोड़	12463 करोड़	49940 करोड़

सजग ग्राहक–अपेक्षाएं एवं अभिकर्ताओं की भूमिका :

ग्राहक प्राप्त होने वाले हितों के कारण बीमा खरीदता है। अतः ग्राहक सेवा का बीमा पॉलिसी के विक्रय में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा विक्रय उपरांत सेवा की अवधारणा को स्वीकार किया गया है, इसलिए अभिकर्ता को प्रत्येक किश्त से कमीशन प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। अभिकर्ता का प्रथम लक्ष्य यह होना चाहिए कि वर्तमान ग्राहक निगम का पहलू छोड़कर प्रतिद्वंद्वी के पहलू में न चला जाए। इसके लिए वर्तमान ग्राहक को निरंतर संतुष्ट करना होगा। कोई भी ग्राहक जब निगम अथवा अभिकर्ता के पास आता है तो उसके मन में कुछ न कुछ न्यूनतम अपेक्षाएं होती हैं। यदि अभिकर्ता ग्राहक के कार्य को ईमानदारी, शीघ्रता, पारदर्शिता के साथ मुस्कुराते हुए संपन्न करते हैं तो बीमाधारक के मस्तिष्क में अभिकर्ता एवं बीमा निगम की एक विशेष छवि प्रतिस्थापित हो जाती है। बीमाधारक अभिकर्ता से कम से कम शिष्टाचार की अपेक्षा के साथ–साथ निगम द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं एवं सेवाओं की भी आशा करते हैं। एक बीमाधारक की निम्नलिखित मुख्य अपेक्षाएं हो सकती हैं[3]–

- अभिकर्ता द्वारा बीमाधारकों को सही एवं शुद्ध सूचना ही प्रदान की जाए।
- निगम एवं अभिकर्ताओं तथा बीमाधारकों के संबंधों में पारदर्शिता बरती जाए।
- निगम एवं अभिकर्ताओं द्वारा बीमाधारकों के आवेदन एवं प्रार्थना पत्रों पर शीघ्र निस्तारण की कार्यवाही सुनिश्चित की जाए।
- बीमाधारकों को बीमा योजना संबंधी नियमों एवं कानूनों की तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों की जानकारी प्रदान की जाए।
- नए–नए बीमा उत्पादों के संबंध में संपूर्ण जानकारी बीमाधारकों को उपलब्ध कराई जाए।
- सरल एवं शुद्ध हित की प्रक्रिया अपनाई जाए।
- बीमाधारकों द्वारा मांगी गई उपलब्ध सूचनाएं समय रहते प्रदान की जाएं।
- सभी बीमाधारकों के लिए समान सेवाओं की उपलब्धता एवं सेवा सुनिश्चित की जाए।
- समय रहते हुए सभी बीमाधारकों को प्रीमियम भुगतान एवं धन वापसी की सूचना की व्यवस्था की जाए।
- सरकार एवं भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा परिवर्तित नियमों की सूचना समय–समय पर बीमाधारकों को ग्राहक–गोष्ठी, सम्मेलन तथा वार्षिक साधारण सभा में प्रदान की जाए।
- बीमाधारकों से पत्र व्यवहार व पॉलिसियों एवं लेन–देनों को गोपनीय बनाए रखा जाए।
- बीमाधारकों को निगम एवं अभिकर्ताओं द्वारा काउंटर पर त्वरित एवं कुशल सेवाएं प्रदान की जाएं।
- पूर्व निर्धारित समय–सीमा के अंतर्गत बीमाधारकों के कार्य को निष्पादित किया जाए।

बीमा सेवाओं के प्रति बीमाधारकों में असंतोष :

विगत दशक में भारतीय जीवन बीमा निगम ने अनेक दबावों एवं प्रतिस्पर्धा के बावजूद अपनी कार्यप्रणाली में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं तथा महानगरीय एवं शहरी क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढाला है। यद्यपि भारतीय जीवन बीमा निगम अर्द्धशहरी, ग्रामीण व दूरदराज के क्षेत्रों तक अपनी महत्वपूर्ण सेवाएं प्रदान करने हेतु प्रयासरत है, किंतु फिर भी निगम ग्रामीण क्षेत्र में अपनी पूर्ण पैठ नहीं बना पाया है।[4] बीमा कर्मचारियों का कहना है कि जिस गति से बीमाधारकों एवं बीमा व्यवसाय में निरंतर वृद्धि हुई है, उसके

अनुरूप कर्मचारियों की संख्या नहीं बढ़ी है। बीमा व्यवसाय की सेवाओं में सुधारों के बावजूद बीमाधारकों की संतुष्टि का स्तर सामान्य या उससे नीचे है, जिसका मुख्य कारण बीमाधारकों की बढ़ती आशाएं, आकांक्षाएं एवं जागृति है। आज निगम एवं अभिकर्ताओं की सेवाओं के प्रति बीमाधारकों में असंतोष के निम्न कारण हैं[5]–

- भारतीय जीवन बीमा निगम की बीमा पॉलिसी तथा ऋण प्रक्रिया एवं कार्यप्रणाली का बोझिल एवं लंबा होना।
- बीमाधारकों द्वारा जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रेषित पत्रों का समय पर उत्तर न देना।
- निगम के कर्मियों में बदलती अनुशासनहीनता, जैसे– व्यस्त एवं कार्यशील समय में काउंटर को छोड़ना, आपसी बातों में व्यस्त रहना, काउंटर पर बीमाधारक को उपेक्षित करते हुए अपने व्यक्तिगत एवं बाद के कार्यों में लगे रहना।
- निगम की अधिकांश शाखाओं में पॉलिसियों एवं कार्यप्रणाली की जानकारी से संबंधित काउंटरों का अभाव है।
- शाखाओं में बीमाधारकों के प्रति रूखा उदासीन एवं कभी–कभी अभद्र व्यवहार करना।
- निगम के कर्मियों एवं अभिकर्ताओं द्वारा बीमाधारकों को अधूरी एवं एक ही समय में अलग–अलग सूचना देना।
- बीमाधारकों के प्रति निगम के कर्मचारियों एवं अधिकारियों का ऋणात्मक दृष्टिकोण।
- बीमाधारकों द्वारा बंद एवं विलंब से भुगतान करने वाली पॉलिसी के संबंध में सेवा प्रदान करने में अनावश्यक विलंब एवं शर्तें लगाना।
- बीमाकर्मी एवं बीमा अभिकर्ताओं को निगम अथवा भारत सरकार द्वारा लागू नवीनतम सूचनाएं एवं परिवर्तित नियमों की जानकारी न होना एवं बीमाधारकों के शिकायती पत्रों पर त्वरित कार्यवाही न करना।
- बीमा पॉलिसी में धन संग्रहण हेतु अभिकर्ताओं द्वारा बीमाधारकों को पर्याप्त एवं उचित सूचनाएं न देना तथा बीमाधारकों से प्रीमियम की धनराशि एकत्रित कर समय से निगम कार्यालय में जमा न कराना।
- बीमाधारकों को समय से नई पॉलिसी बांड्स तथा संपूर्ण ऋण अदा करने पर प्रतिभूति की तरह रखे गए बांड्स को समय से न भेजना।
- अभिकर्ताओं द्वारा बीमाधारकों को उन अच्छी पॉलिसियों के बारे में जानकारी न देना, जिनमें उनका कमीशन कम है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में निगम की शाखाओं में कार्यरत कर्मचारियों द्वारा निर्धारित कार्य समय का नियमित रूप से पालन न करना।
- निगम के अभिकर्ताओं का उच्च शिक्षित एवं पर्याप्त प्रशिक्षण का न होना।
- निरक्षर एवं कम पढ़े–लिखे लोगों को पॉलिसी एवं जोखिमों से संबंधित नियमों एवं नामांकन आदि के बारे में आवश्यक जानकारी से अवगत न कराना।
- शाखाओं में चोरी–डकैती अथवा आतंकवादी घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में सुरक्षा व्यवस्था न होने से बीमाधारकों के विश्वास में कमी।
- बीमा व्यवसाय को सुचारू रूप से चलाने हेतु कार्यालय परिसर में बीमाधारकों हेतु पर्याप्त स्थान, उचित फर्नीचर, पीने के पानी की सुविधा तथा साफ सुथरा वातावरण व सूचना पट आदि का ना होना।
- अभिकर्ताओं द्वारा बीमाधारकों से बिना भरे हुए प्रपत्रों पर हस्ताक्षर करा लेना

और प्रपत्र को बीमाधारक द्वारा न भरवाकर अधूरी जानकारी स्वयं प्रपत्र में भरना।

- अभिकर्ताओं द्वारा चिकित्सीय प्रमाण–पत्रों पर स्वयं हस्ताक्षर करना जो दावे के समय परेशानी उत्पन्न करता है।
- विस्तृत कारोबार के समय के दौरान बीमाधारक के कार्यों को पूरा न करना और बाद के समय अनावश्यक रूप से पुनः बोलना।

निगम द्वारा बीमाधारकों के लिए आदर्श ग्राहक सेवा नीति में सम्मिलित की जाने वाली बातें :

बदलते आर्थिक परिवेश में आज भारतीय जीवन बीमा निगम को अपने व्यवसाय एवं लाभप्रदता में वृद्धि करने के लिए बीमाधारकों हेतु एक आदर्श ग्राहक सेवा नीति को बनाना और अपनाना आवश्यक हो गया है। आदर्श ग्राहक सेवा नीति में निगम द्वारा निम्न बातों को सम्मिलित किया जाना चाहिए–

- निगम द्वारा ग्राहक सेवा से संबंधित जो भी बातें लागू करनी हों, उनको मुद्रित कराकर प्रत्येक कर्मचारी एवं अभिकर्ता को उपलब्ध कराई जाएं और उससे संबंधित निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित कराया जाए।
- निगम को चाहिए कि एक निर्दिष्ट सीमा से उपर बीमा पॉलिसी को खरीदने वाले बीमाधारकों को विशिष्ट सुविधा प्रदान की जाए, जैसे– सभी पॉलिसियों पर अविलंब ऋण की व्यवस्था की जाए।
- निगम द्वारा एक समिति का गठन कर इस बात का मूल्यांकन करना चाहिए कि विभिन्न शाखाओं में ग्राहक सेवा का स्तर क्या है।
- आदर्श ग्राहक सेवा नीति बनाने हेतु सर्वप्रथम अपने अधिकारियों, कर्मचारियों (विकास अधिकारी) एवं अभिकर्ताओं द्वारा झेली जा रही कठिनाईयों के निवारण हेतु सुझाव आमंत्रित कर उनका मूल्यांकन कर, ग्राहक सेवा नीति में शामिल किया जाना चाहिए।
- आदर्श ग्राहक सेवा नीति के अंतर्गत एक निर्दिष्ट सीमा वर्ग से ऊपर के ग्राहकों हेतु महानगरों में ऐसी शाखाएं खोली जाएं, जो पूर्णतया कंप्यूटरीकृत एवं वातानुकूलित हों। इन विशिष्ट बीमा शाखाओं के लिए विशेष योग्यता वाला कार्यरत स्टाफ हो तथा शर्तें भी विदेशी कंपनियों जैसी हों। इन शाखाओं का कार्य–समय भी 10 से 5 बजे तक का रखा जाए।
- निगम ग्राहक सेवा नीति का मूल्यांकन करने हेतु अपनी शाखाओं में वीडियो कैमरे लगा सकते हैं, जिसका टेप देखकर ग्राहक सेवा का आकलन आसानी से किया जा सके तथा कर्मचारियों पर समय का प्रतिबंध लगाने हेतु कार्यालयों में आने–जाने का समय अंकित किया जाए। कार्यालय समय में बाहर जाने व आने हेतु भ्रमण रजिस्टर रखा जाए।
- निगम द्वारा ग्राहक सेवा के क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करने वाले कर्मचारियों एवं अभिकर्ताओं को पुरस्कृत एवं पदोन्नत किया जाए तथा शाखा की छवि खराब करने एवं बीमाधारकों की सेवा के प्रति लापरवाही बरतने पर आवश्यक रूप से दंडित किया जाए।
- निगम को चाहिए कि बीमाधारक को बेची जाने वाली समस्त योजनाओं, उत्पादों, ऋण सुविधाओं एवं सेवाओं से संबंधित योजनाओं की व्यवस्थित एवं पूर्ण जानकारी एक पुस्तक के रूप में छापकर अपने अभिकर्ताओं एवं कर्मचारियों को प्रदान करें तथा बीमाधारकों के लिए शाखाओं में उपलब्ध रखें।
- निगम अपने ग्राहकों के मूल्यांकन हेतु बीमाधारकों के बीच सर्वेक्षण करा सकता है।
- निगम द्वारा ग्राहक सेवा हेतु तैयार मानकों

को शाखाओं में उचित स्थान पर सूचना पट पर लगाकर प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

- निगम द्वारा बीमाधारकों से संबंधित शिकायतों को माह की एक निश्चित तिथि पर एक समिति गठित कर उसके द्वारा सुनवाई की जानी चाहिए तथा निगम के कर्मियों एवं अभिकर्ताओं का पक्ष सुनकर ही निर्णय लिए जाने चाहिए।
- ग्राहक सेवा में लगातार सुधार हेतु निगम द्वारा अपने कर्मचारियों एवं अभिकर्ताओं को समय, क्षेत्र, भाषा, परिस्थितियों एवं मानवीय पहलू को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण एवं निरंतर प्रोत्साहन प्रदान किया जाना चाहिए।
- निगम द्वारा बीमाधारकों को ग्राहक सेवा में सुधार हेतु दैव निदर्शन प्रणाली का प्रयोग कर, एक निश्चित सीमा तक ग्राहकों को चुनकर उनके पास एक प्रश्नावली एवं सुझाव पत्र भेजा जाए, जिसके आधार पर विश्लेषण कर बीमाधारकों की आवश्यकतानुरूप ग्राहक सेवा में परिवर्तन एवं वृद्धि की जाए।
- निगम सफल ग्राहक सेवा के संचालन हेतु विज्ञापन एवं प्रचार–प्रसार का भी सहारा ले सकता है, जिससे बीमाधारकों को निगम द्वारा प्रदत्त सेवाओं एवं नए–नए उत्पादों के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त की जाए।
- निगम द्वारा लागू ग्राहक सेवा हेतु आवश्यक मानकों की जांच एक समिति गठित करके की जा सकती है, जिसके लिए शाखाओं का औचक निरीक्षण कराया जाए।

अच्छी ग्राहक सेवा प्रदान करने हेतु सुझाव :

बीमा उद्योग की वर्तमान प्रगति को ध्यान में रखते हुए भविष्य में बीमा व्यवसाय वृद्धि की बहुत अधिक सम्भावनाएं हैं। बीमा उद्योग में निजी क्षेत्र एवं बैंकों के प्रवेश करने से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि प्रतिस्पर्धा में बीमाधारकों को अधिकतम सुविधा व अच्छे उत्पाद देने वाले ही टिक पाएंगे। भारतीय जीवन बीमा निगम की सभी शाखाएं आपस में नेटवर्किंग पर कार्य करने लगेंगी और कागज रहित बीमा प्रणाली की शुरूआत हो जाएगी। ई–मेल, इंटरनेट, फैक्स तथा अन्य सूचना प्रौद्योगिकी, नई–नई अवधारणा का प्रयोग बीमा उद्योग में होने लगेगा तथा इन सभी हेतु ग्राहक सेवा ही बीमा व्यवसाय का मुख्य आधार बन जाएगा। भविष्य में निगम तथा बीमा कंपनियां कम लागत पर अधिक सुविधा प्रदान करने में सफल होंगी तथा परिचालन में विशेषज्ञों की राय ली जाएगी। ग्राहक सेवा के क्षेत्र में बीमा व्यवसाय में अभी भी व्यापक सुधार की गुंजाइश है। ग्राहक सेवा बीमा व्यवसाय कर्मचारियों, अभिकर्ताओं एवं बीमाधारकों के बीच विश्वास एवं अच्छे व्यवहार पर निर्भर है।[6] निगम के प्रत्येक कर्मचारी एवं अभिकर्ता के मन में यह बात बैठानी होगी कि उनके अस्तित्व की रक्षा, बीमाधारकों की संतुष्टि से ही संभव है। अतः उन्हें व्यवहार मनोविज्ञान की शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।[7] ग्राहक सेवा को बेहतर बनाने के लिए निम्न सुझाव हो सकते हैं–

- निगम द्वारा बीमाधारकों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं एवं नए उत्पादों को प्रारंभ करते समय यह ध्यान रखना होगा कि अच्छी सेवाओं के लिए बीमाधारक उपयुक्त भुगतान करने के लिए तैयार है अथवा नहीं।
- निगम के कर्मचारियों, अधिकारियों एवं अभिकर्ताओं के बीच उचित संप्रेक्षण की व्यवस्था की जाए, ताकि बीमाधारकों के समक्ष वे भिन्न–भिन्न प्रकार की जानकारी न दें।
- निगम के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं अभिकर्ताओं में निगम एवं बीमाधारकों के

प्रति प्रतिबद्धता एवं समर्पण की भावना होनी चाहिए, जिससे वे बीमाधारकों की सेवा हेतु अभिप्रेरित हो सकें।

- निगम द्वारा बीमाधारकों के लिए समयानुसार नए–नए उत्पादों का उतारना, ताकि बीमाधारक निगम का पहलू छोड़कर किसी अन्य बीमा कंपनी में जाने के लिए प्रेरित न हो।
- निगम की सभी शाखाओं में सुशिक्षित युवा प्रशिक्षण अभिप्रेरित करने के उपरांत ही नियुक्त किए जाएं।
- निगम के कर्मचारियों, अधिकारियों एवं अभिकर्ताओं को समय–समय पर उत्पादों एवं सेवायोजन में हो रहे परिवर्तनों की पूर्ण जानकारी प्रदान की जाए।
- निगम द्वारा बीमाधारकों की अपेक्षाओं को पूरा करने हेतु समय–समय पर कर्मचारियों, अधिकारियों एवं अभिकर्ताओं को नई–नई योजनाओं के बारे में प्रभावी प्रशिक्षण दिया जाए।
- निगम द्वारा सूचना एवं प्रौद्योगिकी के विकास हेतु अपनी शाखाओं को और अधिक धन आवंटित किया जाए, जिससे शाखाओं में नवीनतम प्रौद्योगिकी लागू हो सके तथा बीमाधारकों व कर्मचारियों के बीच अनावश्यक टकराव को टाला जा सके।
- निगम द्वारा बीमाधारकों को अच्छी ग्राहक सेवा प्रदान करने हेतु उनकी समस्त आवश्यकताओं का पता लगाया जाए और उनके निवारण हेतु वर्तमान में प्रयुक्त नई–नई तकनीकियों का इस्तेमाल किया जाए।
- निगम के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं अभिकर्ताओं द्वारा सभी बीमाधारकों के साथ आवश्यकतानुसार समान एवं उचित व्यवहार किया जाए एवं निगम द्वारा अपनी सभी शाखाओं को ग्राहक अनुकूल बनाया जाए।
- आधुनिकीकरण के वर्तमान दौर में बीमाधारकों की संतुष्टि हेतु सभी शाखाओं को पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत किया जाए और इन्हें कम्प्यूटर नेटवर्क, ई–मेल, इंटरनेट सुविधा युक्त कॉल सेंटर सुविधा से जोड़ा जाना चाहिए।
- निगम कर्मचारियों एवं अभिकर्ताओं द्वारा बीमाधारकों के सुख एवं दुख में मुलाकात कर व्यवहारिकता, ईमानदारी तथा नैतिकता का पूर्ण परिचय देना चाहिए।
- ग्राहक सेवा एवं निगम के प्रति नकारात्मक, प्रतिबंधात्मक, व्यवहारोल्लंघन एवं कार्य के प्रति लापरवाही बरतने वाले कर्मचारियों एवं अभिकर्ताओं को दंडित अवश्य किया जाए, अन्यथा इनका बीमा–कारोबार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।
- बीमाधारकों को लाने और उन्हें बनाए रखने हेतु निगम द्वारा अपनी शाखाओं के परिसरों में सजावट एवं वातानुकूलित कर ग्राहकों के बैठने की उचित व्यवस्था तथा उनकी समस्याओं हेतु अलग कमरे में चर्चा करने से बीमाधारकों की निष्ठा में वृद्धि होगी।
- उचित ग्राहक सेवा बनाए रखने हेतु शाखा स्तर पर कार्य का आकलन कर प्राप्त कर्मचारियों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।
- निगम द्वारा बीमाधारक की बात सुनने को सर्वोच्च प्राथमिकता देने हेतु शिकायत निवारण कक्ष भी शाखाओं में स्थापित किया जाएं तथा समय–समय पर बीमाधारक सम्मेलन करके अविलंब शिकायतों का निवारण किया जाए।
- अच्छे अधिकारियों, कर्मचारियों का असमय स्थानांतरण न किया जाए, उन्हें उचित

समय पर पदोन्नति एवं पुरस्कार भी दिया जाए।

- निगम द्वारा बीमाधारकों को ग्राहक सेवा अभिकर्ताओं एवं कर्मचारियों के माध्यम से दी जाती है, अतः निगम को प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहनात्मक प्रयासों को और अधिक सघन एवं प्रभावी बनाना चाहिए।
- निगम द्वारा बीमाधारकों को ग्राहक सेवा प्रदान करने हेतु बड़े अभिकर्ताओं द्वारा उपयुक्त स्थान, तकनीकी तथा उपयुक्त स्टेशनरी एवं प्रपत्रों से सुसज्जित कार्यालय की स्थापना भी की जा सकती है।
- निगम की ओर से अभिकर्ताओं द्वारा त्यौहार, नववर्ष या अन्य शुभ अवसरों पर मुलाकात तथा शुभकामनाएं प्रेषित करनी चाहिए तथा समयानुसार उचित उपहार भी बीमाधारकों को भेंट करने चाहिए।
- निगम द्वारा मेलों, प्रदर्शनियों तथा अन्य महोत्सवों आदि में स्टाल लगाकर बीमा प्रचार एवं ग्राहक सेवाओं से संबंधित प्रचार–प्रसार करना चाहिए और बीमाधारकों से सुझाव भी आमंत्रित करने चाहिए।

बीमा व्यवसाय में निजी क्षेत्र के प्रवेश करने तथा नए–नए उत्पाद, सेवाएं एवं सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग से आपसी प्रतिस्पर्धा बढ़ी है और भारतीय जीवन बीमा निगम के हिस्से में गिरावट होने लगी है। निगम द्वारा यह महसूस किया जाना चाहिए कि बाजार में केवल बड़े एवं शहरी बीमाधारकों के सहारे नहीं टिका जा सकता। अतः निगम को अपने उत्पादों एवं सेवाओं पर पुनः विचार करना ही पड़ेगा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपना बाजार तलाशना होगा। यह भी तय है कि भविष्य में वही बीमा कम्पनी सफल होगी, जो अपनी योजनाओं एवं नीतियों को ग्राहकोन्मुख और बाजारोन्मुख बनाएगी। यदि बीमाधारकों को दी जाने वाली सेवा संबंधपरक है और बीमाधारक निगम की सेवाओं से संतुष्ट है, तो इससे निगम की छवि भी सुधरेगी और साथ–साथ लाभदायकता भी बढ़ेगी। बीमाधारकों को सेवाओं का बेहतर प्रस्तुतीकरण करने के लिए निगम को नए–नए एवं आकर्षक प्रयास करने होंगे। बीमाधारक ही सेवा का रूप निर्धारित करने में सहायक होंगे। यदि निगम विपणन में ग्राहक सेवा हेतु नई–नई तकनीकी एवं सुविधाओं का उपयोग करे तो यह संभव नहीं होगा कि जब भारतीय जीवन बीमा निगम बीमा उद्योग की ऊंचाईयों को न छू सके और अपने निर्धारित प्रतिमानों को प्राप्त न कर सके।

: संदर्भ सूची :

1. शर्मा आर. के., बैंकिंग बीमा एवं विदेशी व्यापार कानून और कार्यप्रणालियाँ, पब्लिशर नई दिल्ली, 2001, पृ. सं. 19.4
2. शर्मा अशोक कुमार, योगक्षेम, भारतीय जीवन बीमा निगम, मुंबई, नवंबर 2005, पृ. सं. 26
3. जगपाल रणदीप सिंह, योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, मार्च 2000, पृ. सं. 9
4. शुक्ला जे. एन./ शुक्ला एस.के., बीमा सिद्धांत एवं व्यवहार, नवमान प्रकाशन अलीगढ, पृ. सं. 152
5. कुमार चंचल/ सिंह नरेन्द्रपाल, भारतीय जीवन बीमा निगम की कार्यप्रणाली पर वित्तीय सुधारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, शोध प्रबंध 2006, महात्मा ज्योतिबाफुले विश्वविद्यालय, बरेली
6. बिश्नोई गोपीचंद, प्रगति, भारतीय जीवन बीमा निगम कानपुर, जुलाई 2015, पृ. सं. 23–25
7. योगक्षेम, भारतीय जीवन बीमा निगम, मुम्बई, सितंबर 2016, पृ. सं. 119–121

वेबसाइट www.lic.in

Samaj Vigyan Shodh Patrika

Vol. 2 No. XXXX (2017-18)
ISSN 0973-7626
RNI: UPBIL/2005/16107
OCTOBER 2017 - MARCH 2018

नक्सलवादी आन्दोलन एक सामाजिक-आर्थिक समस्या

रीना (शोध छात्रा)
समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र विभाग
समाज विज्ञान संकाय
दयालबाग एज्युकेशनल इन्स्टीट्यूट, आगरा

प्रो० पूर्णिमा जैन (विभागाध्यक्षा)
समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र विभाग
समाज विज्ञान संकाय
दयालबाग एज्युकेशनल इन्स्टीट्यूट, आगरा

आज मानव ने विविध क्षेत्रों में चहुंमुखी प्रगति की है, अनेक उपलब्धियां अर्जित की हैं, किन्तु प्रारंभ से अनेक सूक्ष्म तत्वों की ओर सरकार के समुचित ध्यान न दे पाने के कारण वर्तमान में अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, जिन पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय किसी भी समाज के विकास के लिए अति महत्वपूर्ण आवश्यकता है। जब–जब सामाजिक व आर्थिक न्याय की अवहेलना हुई है, तब–तब तीव्र असंतोष तथा गहरी राजनीतिक निराशा उत्पन्न हुई है। देश के विभिन्न भागों में अभी भी ऐसे पिछड़े क्षेत्र हैं, जहां पर आज भी विकास संभव नहीं हो पा रहा। इससे समाज में आंतकवाद, हिंसा और नक्सलवाद जैसी समस्याओं का जन्म हुआ है। नक्सलवाद ने समाज के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक–सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है।

सामान्य धारणा यह है कि नक्सलवादी हिंसक तथा अपराधियों का एक समूह है, जो अपने स्वार्थों के लिए निर्दोषों की हत्याएं, लूटपाट और हिंसा करके समाज में अशांति फैलाता है। लेकिन इस धारणा के विपरीत नक्सलवाद एक राजनीतिक विचारधारा है, जो मार्क्स, लेनिन और माओ–त्से–तुंग की विचारधारा से संचालित और अनुशासित है। इस विचारधारा को मानने वाले नक्सलवादी कहे जाने लगे तथा इनके राजनीतिक दर्शन को नक्सलवाद का नाम मिल।[1] (कुन्दन, 2010, 9–10)। साम्यवादी विचारधारा के अनुसार उद्देश्य–प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग क्रांति है, और इसलिये नक्सलवादियों ने क्रांति और हिंसा के मार्ग को अपना साधन माना है। नक्सलवाद के अनुसार सशस्त्र विद्रोह से ही सच्ची आजादी को हासिल किया जा सकता है।[2] (टाइलर, 1977, 3–4)। पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी सम्भाग के एक छोटे से गांव नक्सलवाड़ी से 2 मार्च 1967 को चारू मजूमदार और कानू सान्याल के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंड़िया (मार्क्सवादी) के द्वारा नक्सली आन्दोलन की बुनियाद रखी गयी।[3] (जौहरी, 1972)। जमींदारों के द्वारा सताये भूमिहीन एवं जातिप्रथा के शिकार लोग भी इस आन्दोलन में शामिल हो गये।[4] (मिश्रा, 2010, 27)। नक्सलवाड़ी में जन्म लेने वाला आन्दोलन आज इतना हिंसक और क्रूर बन गया है कि इसकी सीमायें देश के लगभग 40 प्रतिशत भू भाग में फैल चुकी हैं। आज देश के 20 राज्य और 230 जिले नक्सली समस्या से प्रभावित हैं। इन राज्यों में 20,000 से अधिक नक्सली सक्रिय हैं।

नक्सलवाद अब किसी एक राज्य की

समस्या न रहकर राष्ट्रीय समस्या बन चुका है। देशभर में गरीबी कुपोषण, भुखमरी, निरक्षरता, लिंगभेद, जातिभेद, वर्गभेद, वर्णभेद, क्षेत्रीयता, जल, जंगल व जमीन की असंतुलित लूट–खसोट एवं पर्यावरण के विनाश की स्थिति बनी हुई है। भूमि–सुधारों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। युवा बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है। दूर–दराज के क्षेत्रों में प्रशासनिक व्यवस्था पूरी तरह से नहीं पहुंच पा रही। नक्सलवाद भारत की राजनीति का अनचाहा अनिवार्य हिस्सा बन गया है और उसमें लगातार बढ़ोत्तरी हुई है।

नक्सलवाद के मुख्य कारण :

पी एन मुखर्जी[5] ने नक्सलवादी आन्दोलन का आधार किसानों को बताया है, जिनका शोषण जमींदार, महाजन और सूदखोर कर रहे थे। किसानों के इस शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न जैसी समस्याओं के समाधान के लिए नक्सलवादियों ने इनको अपने साथ जोड़ने का प्रयास किया। **मिश्रा** के अनुसार व्यवस्थागत अन्याय एवं अत्याचार, उत्पीड़न और शोषण, भूमि सुधार कानून का अभाव, सर्वहारा शासन तंत्र की समस्या अति विषमता व असमानता, भय–भूख, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, अशिक्षा एवं अज्ञानता, मौलिक आवश्यकताओं का अभाव, भौगोलिक परिस्थितियाँ, ऋणग्रस्तता और सूदखोरी, इस आन्दोलन के विस्तार के मुख्य कारण हैं। **कलवार**[6] के अनुसार नक्सलवाद की समस्या मुख्यतः जनकल्याण की योजनाओं का सही रूप से क्रियान्वयन न होना, प्राकृतिक संसाधनों के असमान वितरण, शोषण, जागरूकता की कमी आदि के कारण शुरू हुई है। **कुन्दन** के अनुसार नक्सलवादी आन्दोलन के मुख्य कारण हैं– भूमि और मजदूरी, सामंती उत्पीड़न, पुलिस का बर्बर व्यवहार, प्रशासन तथा सरकार की सामंतों के प्रति पक्षपातपूर्ण नीति, भूख एवं बेरोजगारी, राजनीतिक एवं आर्थिक भ्रष्टाचार और नक्सली सिद्धान्तों से प्रभावित होना। इन कारणों के अतिरिक्त भी नक्सलवाद फैलने के और भी कई कारण हैं, जैसे– उचित प्रशासनिक भूमिका का अभाव, राज्यों में आपसी समन्वय का अभाव, सरकार के प्रति जनता का अविश्वास, आदिवासियों का बहकावे में आना, वनोपज के उचित दाम न मिलना, अशिक्षा आदि।

नक्सलवाद के मुख्य उद्देश्य :

नक्सलवाद मूल रूप से मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष के सिद्धांत पर आधारित है, परन्तु आज यह अपने वास्तविक उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता को भूलकर अपराध, हिंसा के मार्ग पर चल पड़ा है। नक्सलवाद के उद्देश्य ही उदय के कारणों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। इस आन्दोलन के उद्देश्य हैं– सर्वहारा शासन तन्त्र की स्थापना करना, जिसमें मजदूरों, कृषकों तथा अन्य दबे–कुचले वर्गों का प्रभुत्व हो। मूल रूप से यह आन्दोलन भूमि–व्यवस्था से जुड़ा हुआ है, क्योंकि वर्तमान में देश की बहुसंख्यक जनता के जीविकोपार्जन का साधन कृषि कार्य ही है। स्वतन्त्र भारत के प्रत्येक क्षेत्र में आरम्भ से ही घोर विषमता व्याप्त है। चाहे वह क्षेत्र सामाजिक हो, आर्थिक हो या राजनीतिक हो। सामाजिक तौर पर यहाँ सदियों से वर्गीय असमानता मौजूद है। इस वर्गीय असमानता में ही विषमता का बीज छुपा है।

वर्तमान में नक्सलवाद :

मनुष्य को जीवन का निर्वाह करने के लिए तीन मूलभूत आवश्यकतायें होती हैं– रोटी, कपड़ा और मकान। लेकिन भारत में बहुत–से ऐसे परिवार हैं, जिनकी ये तीनों आवश्यकतायें पूरी नहीं होतीं। और जिसकी ये आवश्यकतायें पूरी नहीं होतीं, वह राष्ट्र की सुरक्षा और विकास के बारे में कैसे सोच सकता है? एक ओर तो भारत के संविधान में नागरिकों को सामाजिक न्याय प्रदान किया गया है, वहीं दूसरी ओर देश के कई राज्यों में आम जनता को मूलभूत आवश्यकताओं से भी दूर रखा जा रहा है। भारत को आजाद हुए 69 वर्ष बीत चुके हैं, परन्तु फिर भी समाज से निर्धनता, अशिक्षा एवं बेरोजगारी को दूर नहीं किया जा सका, जिसके कारण युवा वर्ग राष्ट्रविरोधी

गतिविधियों की ओर तेजी से बढ़ते हुए नजर आ रहा है। भारत जैसे विविध आयामी देश की शासन व्यवस्था में हरेक व्यक्ति पूर्णतः संतुष्ट नहीं हो सकता। नक्सली भी ऐसे ही लोगों का समूह है, जिन्हें लगता है कि वर्तमान व्यवस्था असमानता पर आधारित है, जिस कारण समाज में समानता तथा विकास नहीं हो सकता। नक्सल प्रभावित क्षेत्रों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति आजादी के बाद से ही दयनीय रही है। नक्सलवादी घटनाएँ कुल मिलाकर प्रतिशोध के कारण हो रही हैं। इनसे आम जनता के साथ–साथ स्वयं नक्सलियों एवं सरकारी अमले का भारी नुकसान हो रहा है। इसमें जहाँ एक ओर नक्सलियों की अज्ञानता है, वहीं दूसरी ओर शासन की लापरवाही एवं भ्रष्टाचार शामिल है। प्रत्येक सरकार अपने पीछे की सरकारों पर आरोप लगाती रही और वास्तविक समस्या पर ध्यान नहीं दिया, जिससे नक्सलवाद बढ़ता रहा। सरकार एवं सभ्य समाज के व्यक्तियों का मानना है कि कुछ बुद्धिजीवी लोग क्रांति तथा विद्रोह की विचारधारा के माध्यम से गरीब, किसान, मजदूर तथा आदिवासियों को भटका कर उन्हें नक्सली बनने व नक्सलवाद का समर्थन करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। देखा जाए तो इसमें किसे दोष देना उचित होगा? उन भोले–भाले अशिक्षित गरीब, किसान, मजदूर व आदिवासियों को, जो किसी प्रकार कमरतोड़ मेहनत के बाद दो समय का भोजन जुटा पाते हैं या फिर उस सरकार एवं सभ्य समाज को, जो सुविधा– सम्पन्न होते हुए भी गरीब, किसान, मजदूर तथा आदिवासियों का दर्द न समझकर उन्हें नक्सली बनने को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरित कर रहे हैं। निश्चित रूप से लगभग सारा दोष सरकार एवं सभ्य समाज का है, जो विवेकशील, विचारशील होने पर भी उन लोगों को उनका हक न देकर उन्हें विद्रोह या नक्सलवाद अपनाने के लिए विवश कर रहे हैं। स्थिति में सुधार लाना है, तो सबसे पहले मौलिक चीजों में सुधार लाना होगा। वंचितों के हितों की रक्षा के लिए बेहतर यही होगा कि नक्सली संगठन लोकतंत्र की सीमाओं में रहकर कार्य करें।

निष्कर्ष :

अन्त में यही विचार सामने आता है कि जब तक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विषमता दूर नहीं होगी, जब तक लोगों को भरपेट भोजन, मूलभूत आवश्यकताएँ, शोषण एवं दमन से मुक्ति नहीं मिलेगी, तब तक नक्सलवादी आन्दोलन, गरीबों, किसानों, मजदूरों आदिवासियों, पिछड़े, दबे–कुचलों तथा शोषित वर्ग के लोगों के लिए प्रतिरोधात्मक हथियार के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में इस्तेमाल होता रहेगा। वर्तमान में नक्सलवादी आन्दोलन भले ही सामाजिक आर्थिक परिवर्तन लाने का प्रतीक बनकर सरकार के विरूद्ध और आदिवासियों तथा गरीबों के हितों के संघर्ष का दावा करे, किंतु सत्य तो यह है कि यह आन्दोलन देशी–विदेशी समर्थकों के संरक्षण का परिणाम है। भारत–विरोधी विदेशी शक्तियां भारतीय लोकतंत्र को अस्थिर करने के लिए नक्सलवादी आन्दोलन को सैनिक, आर्थिक और वैचारिक मदद प्रदान कर रही हैं। और सत्य यह है कि समाज में सामाजिक आर्थिक विसंगतियों को दूर किये बिना नक्सलवाद को खत्म नहीं किया जा सकता। भारत में यदि शोषण, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अत्याचार, भूमि का सही वितरण जैसी समस्याओं का समाधान नहीं किया गया, तो आने वाले समय में नक्सलवाद का रूप और विकराल हो सकता है। सरकार को इन क्षेत्रों में सामाजिक आर्थिक कार्य करने होंगे, और नीतियों में सुधार लाना होगा तथा उनका क्रियान्वयन सही प्रकार से करना होगा। नक्सलवादी क्षेत्रों में कानून की स्थापना करने के लिए उनके साथ सख्ती के साथ नहीं, बल्कि सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाने की आवश्यकता है।

: संदर्भ सूची :

1. कुन्दन, लालेन्द्र कुमार (2010) : नक्सलवाद– उद्भव और विकास,

क्लासिकल पब्लिशिंग, नई दिल्ली, पृष्ठ 9–10

2. टाइलर, मेरी. (1977) : 'भारतीय जेलों में पांच साल'. नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ.–4.
3. जौहरी, जे. सी. (1972) : 'नक्सलाईट पोलिटिक्स इन इण्डिया', दिल्ली रिसर्च पब्लिकेशन्स.
4. मिश्रा, एस. के. (2010) : नक्सलवाद, के0 डब्ल्यू0 पब्लिशर प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ 27
5. पी एन मुखर्जी. (2012) : सोशल मूवमेन्ट्स इन इन्डिया, संपादित एम एस ए राव, नई दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशंस, पृष्ठ 34–35
6. कलवार, एम के. (2010) : भारत में नक्सलवाद की समस्या का अध्ययन, रिसर्च लिंक–79, 81–83

Samaj Vigyan Shodh Patrika

Vol. 2 No. XXXX (2017-18)
ISSN 0973-7626
RNI: UPBIL/2005/16107
OCTOBER 2017 - MARCH 2018

ग्रीक दर्शन में पारिस्थितिकी- एक संश्लेषणात्मक दृष्टि

डॉ० शिवपूजन सिंह यादव
स0 प्रो0, दर्शनशास्त्र विभाग
के0जी0के0 महाविद्यालय, मुरादाबाद।

पारिस्थितिकी का सम्बन्ध मानव एवं मानवेतर प्राणी जगत् तथा पर्यावरण के सहसम्बधों से है। इसका प्रयोजन उन परिस्थितियों तथा कारकों पर विचार करना है, जो कि इन सह–सम्बन्धों को संवाद एवं समन्वय की अवस्था में बनाये रखने के लिए अनुकूल अथवा प्रतिकूल होते हैं। वर्तमान युग में वैज्ञानिक ज्ञान के विकास के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण तथा मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए नवीन तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी की समस्या वैश्विक स्तर पर अनुभव की जा रही है। सम्भावित पारिस्थितिकी संकट से बचने के लिए ऐसे आधारों की तलाश की चेष्टा की जा रही है, जिससे पारिस्थितिकी की समझ में स्पष्टता आ सके। प्राचीन ग्रीक दर्शन में पारिस्थितिकी के सन्दर्भ में अलग से विचार करने की परम्परा नहीं रही हैं। इस शोधपत्र के माध्यम से ग्रीक दर्शन पर पारिस्थितिकी दृष्टि का आरोपण कर पारिस्थितिकी चेतना से सम्बन्धित क्या विचार प्राप्त हो सकते हैं, का संश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार करने का प्रयास किया जायेगा। यहाँ ग्रीक दर्शन में पारिस्थितिकी दृष्टि का संश्लेषणात्मक विवेचन करने का प्रयास किया जा रहा है।[1]

सुकरात पूर्व ग्रीक दर्शन यूरोप के बौद्धिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। प्राचीन ग्रीक विचारकों का दृष्टिकोण जीवन एवं जगत् के प्रति निष्पक्ष, तार्किक और यथार्थवादी है। अपने निष्पक्ष दृष्टिकोण के कारण वे जगत् की पौराणिक व्याख्या न करके उसका निरूपण बौद्धिक एवं प्राकृतिक दृष्टिकोण से करते हैं। उनके लिए दर्शन एक जीवन पद्धति है। उनमें धार्मिक रुढ़िवादिता एवं कट्टरता का अभाव है। इसी कारण जगत् की बौद्धिक और प्रकृतिवादी व्याख्या सम्भव हो सकी। ग्रीक विचारकों की स्वाभाविक अभिरुचि किसी घटना के प्राकृतिक कारणों की खोज करने में थी। वे किसी घटना के कारण के रूप में आध्यात्मिक शक्तियों का सहारा नहीं लेते थे।[2]

ग्रीक दर्शन के प्रारम्भिक दौर में थेलीज (624 ई0पू0–550ई0 पू0) ने जल को, एनेक्जिमेन्डर ने एपिरन (Apiron), अर्थात् असीमित द्रव्य को और एनैक्जिमेनिन ने 'वायु' को सृष्टि का मूल आधार माना है। इन विचारकों के लिए उनके द्वारा मान्य जल (थेलीज) एपिस (एनैक्जिमेंडर) और वायु (एनैक्जीमेनीन) ही परमसत या परम तत्व है। पारिस्थितिकी चिन्तन की दृष्टि से जल और वायु को परमसत् के रूप में स्वीकार करने वाली ग्रीक विचारधारा पारिस्थितिकी के सम्पोषण में सहायक सिद्ध हो सकती है। क्योंकि जल और वायु को

परमसत् स्वीकार करने वाली विचारधारा इसकी शुद्धता एवं पवित्रता को विकृत करने को कभी भी मान्यता नहीं दे सकती है। उक्त विचार पारिस्थितिकी सन्तुलन के लिए अति महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं।

एम्पेडोक्लीज (Empedocles) ने पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु इन चार महाभूतों को अविनाशी, अपरिवर्तनशील और सत् माना है। ये चारों महाभूत ही जगत् की सभी वस्तुओं के मूल कारण हैं। इनके संयोग से सृष्टि और वियोग से प्रलय होता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने प्रेम और घृणा अथवा सामंजस्य और संघर्ष के सिद्धान्त का उल्लेख किया है। प्रेम के कारण महाभूतों के घटक परस्पर संगठित होते हैं। घृणा एवं संघर्ष के कारण धीरे–धीरे विघटित होते हैं। प्रत्येक महाभूत या द्रव्य का संघात परिवर्तनशील है, इसलिए अस्थायी होता है। प्राचीन ग्रीक विचारधारा में जीवन एवं सृष्टि के प्रति मूलतः प्रकृतिवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया है। इस प्रकृतिवादी दर्शन की पराकाष्ठा ल्यूसिपस और डिमाकिटस के परमाणुवादी दर्शन में होती है। डिमोक्रिटस ने परमाणुओं में गुणात्मक भेद स्वीकार नहीं किया, किन्तु परिमाणात्मक भेद को स्वीकार किया है। इन परमाणुओं से ही वायु की उत्पत्ति होती है। उसके बाद क्रमशः जल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। परमाणुवादियों के अनुसार मानवात्मा परमाणुओं से पृथक् तत्त्व नहीं है, जो कि परमाणुओं के विशिष्ट संयोग में उत्पन्न होती है। डिमाक्रिटान भी बुद्धिवादी हैं, क्योंकि उनके अनुसार बुद्धि ही आत्मा की सर्वोत्तम क्रिया है। डिमाक्रिटस ने एक संयमित जीवन और बौद्धिक चिन्तन को विशेष महत्व दिया है। इस प्रकार वह भौतिकवादी होते हुए भी वासनात्मक सुख का समर्थन नहीं करता है। वह सद्गुणों और बौद्धिक जीवन को ही आनन्द का मार्ग मानता है।[3]

प्रारम्भिक ग्रीक दार्शनिक सृष्टि की प्रकृतिवादी व्याख्या करके प्राकृतिक तत्वों को सर्वोपरि मानता है, जिससे मानवीय क्रिया नियन्त्रित होती है। ये विचारक मानव शक्ति को प्रभावहीन मानते थे। समस्त कार्य प्राकृतिक नियन्त्रण में सम्पन्न करते थे, जो कि वर्तमान पारिस्थितिकी सम्पोषण के लिए सहायक दृष्टिकोण है।

सोफिस्ट दार्शनिकों का उदय होते ही विश्व की उत्पत्ति की प्रकृतिवादी व्याख्या के स्थान पर मानव केन्द्रित विचारधारा का प्रस्फुटन होता है। सोफिस्ट सम्प्रदाय के प्रवर्तकों में अबंडेरा के निवासी प्रोटागोरस का नाम अग्रगण्य है। उनका सुप्रसिद्ध सिद्धान्त है कि 'मनुष्य सभी वस्तुओं का मानदण्ड है' प्रोटागोरस का यह कथन सम्पूर्ण सोफिस्ट दर्शन का सार है। ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य के लिए वही सत्य है, जो उसे सत्य प्रतीत होता है। सोफिस्टों ने इस सिद्धान्त का प्रयोग नीतिशास्त्र के क्षेत्र में किया, जिससे वे सापेक्ष नैतिकता के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनके अनुसार मनुष्य के बिना नैतिक जीवन का कोई मूल्य नहीं हो सकता है। इस प्रकार सोफिस्टों ने मानव केन्द्रित नैतिक दर्शन की स्थापना की।[4]

पारिस्थितिकी सन्तुलन के दृष्टिकोण से मानव केन्द्रित विचारधारा उचित प्रतीत नहीं होती है। सोफिस्ट विचारक मानवीय क्रिया–कलाप को पग–पग पर चढ़ा बढ़ाकर प्रस्तुत करते हैं तथा मानव को ही अपने आप में मूल्यवान मानते हैं। यह विचार ''मानव को ही स्वयं का भाग्य विधाता तथा मूल्य निर्माता'' मानते हुए ''यह जीवन किस प्रकार सुखी हो'' की वकालत करता है। इसकी व्यावहारिक परिणति स्वरूप मनुष्य दुनिया की तमाम वस्तुओं को अपने उपभोग का साधन समझने लगा। पारिस्थितिकी संकट मनुष्य की इसी सोच का नतीजा है।

ग्रीक दर्शन के स्वर्ण युग का प्रारम्भ सुकरात के आविर्भाव से प्रारम्भ होता है। सुकरात ने सोफिस्टों के सिद्धान्त ''मनुष्य सभी वस्तुओं का मानदण्ड है'' का निराकरण किया। सोफिस्टों के आत्मनिष्ठावादी मानदण्डों के स्थान पर उसके लिए वस्तुनिष्ठ एवं सार्वभौमिक मानदण्डों को

प्रतिष्ठित किया। सुकरात के अनुसार ज्ञान सद्गुण है। जीवन का परम लक्ष्य सद्गुण है। सद्गुणी अथवा नैतिक जीवन ही मनुष्य के लिए परम श्रेय है। सुकरात के अनुसार करुणा, साहस, न्याय, धैर्य, आदि एक ही सद्गुण (विवेक) के विभिन्न पहलू हैं। उनमें परस्पर विरोध नहीं है। ये सभी सद्गुण सामंजस्यपूर्ण हैं। किसी व्यक्ति के ज्ञान एवं आचरण में सामंजस्य होना उसके विवेकयुक्त (सद्गुणी) पुरुष होने की पहचान है। सुकरात की अभिरुचि इसमें थी कि मनुष्य को आचार–व्यवहार में उच्च कोटि का होना चाहिए। दर्शन जीवन के लिए है। यह एक जीवन पद्धति है। उसने एक सामन्जस्य पूर्ण एवं सन्तुलित जीवनचर्या पर विशेष बल दिया है। सुकरात का मानना है कि विवेकपूर्ण आनन्दमय जीवनयापन के साथ सामाजिक कल्याण के लिए आत्मसंयम की आवश्यकता होती है।[5]

सुकरात द्वारा सोफिस्टों के मानवकेन्द्रवाद की आलोचना तथा उनके द्वारा प्रस्तुत नैतिक विचार पारिस्थितिकी सम्पोषण के विचार से काफी साम्य रखते हैं। करुणा, न्याय, आत्मसंयम को सुकरात ने सद्गुण के विभिन्न पहलुओं के रूप में स्वीकार किया है। ऐसा सद्गुण पारिस्थितिकी जगत् के जैव एवं अजैव तत्वों के मध्य सामंजस्य को सुदृढ़ करते हैं। ऐसा विचार प्रकृति शोषण को मान्यता नहीं प्रदान कर सकता है।

प्लेटो का नैतिक दर्शन उसकी तत्वमीमांसा पर आधारित है। यह विश्व बौद्धिक व्यवस्था से युक्त है। यद्यपि भौतिक वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं, तथापि ये मूलतः अपरिवर्तनशील प्रत्ययों की अभिव्यक्ति हैं। यद्यपि जीवन का लक्ष्य शारीरिक बन्धनों से मुक्त होना है, तथापि आत्मा के तीनों भागों के अनुरूप विवेक, साहस, आत्मसंयम तथा तीनों के सामन्जस्य से उत्पन्न न्याय को प्रमुख सद्गुण माना गया है। सभी सद्गुण शुभ हैं। सुकरात ने केवल विवेक (ज्ञान) को ही एकमात्र सद्गुण माना था, जबकि प्लेटो ने किसी एक सद्गुण को एकान्तिक रूप में स्वीकार नहीं किया। उनके लिए सर्वोच्च श्रेय ही सम्पूर्ण दर्शन का प्रतिपाद्य विषय है। विवेक, साहस, संयम और न्याय इन चारों सद्गुणों का आधार शुभत्व है। प्लेटो के अनुसार दृश्य जगत की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इससे स्पष्ट है कि प्लेटो ने न तो विशुद्ध त्यागवाद और न भोगवाद को ही परमश्रेय माना है, किन्तु उन्होंने पाशविक और वासनात्मक सुखवाद का परित्याग करके बौद्धिक आनन्दवाद एवं प्रेम को ही जीवन का लक्ष्य घोषित किया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति एक ऐसे सामंजस्यपूर्ण जीवन में ही सम्भव है, जिसके अन्तर्गत मानव व्यक्तित्व एवं समाज की समस्त क्षमताओं का बौद्धिक सदुपयोग हो सके। न्याय, जो समानुपात और समन्वय का ही एक रूप है, समाज के प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग का भी गुण है।[6]

प्लेटो के दर्शन का आरोपण पारिस्थितिकीय दर्शन पर करने पर एक तथ्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है कि यह प्रकृति के शोषण को किसी भी रूप में स्वीकृत नहीं करता है। प्लेटो ने भोगवाद, पाशविक एवं वासनात्मक सुख को स्वीकार नहीं किया हैं। उन्होंने प्रेम, सामंजस्य, समन्वय एवं बौद्धिक आनन्द को जीवन का लक्ष्य घोषित किया है। यह सब प्राकृतिक तत्वों के निर्वहनीय उपयोग से ही सम्भव है, जो पारिस्थितिकीय सम्पोषण की ओर संकेत करते हैं।[7]

अरस्तू प्रकृति का अन्वेषक होने के कारण लौकिक जगत् को घृणा की दृष्टि से नहीं देखता है। वह आत्मा से परे किसी अलौकिक श्रेय को स्वीकार नहीं करता है। श्रेय का आश्रय मानव स्वयं है। मानव स्वभाव के अन्तर्गत जीव तत्व (Vegetative Part), क्षुधा तत्व (Appetitive Part), बौद्धिक तत्व (Rational Part) ये तीन अंग सम्मिलित हैं। नैतिक जीवन बुद्धि के द्वारा भावनाओं एवं क्षुधाओं के नियन्त्रण में निहित है।[8] वासनाओं और भावनाओं का पूर्णरूपेण दमन करना नैतिक दृष्टि से न तो आवश्यक है और न सम्भव है। भावनाओं और वासनाओं का कितना नियमन बुद्धि के द्वारा किया

जाय, यह परिस्थितिकी पर निर्भर करता है। अरस्तू के अनुसार सद्गुण सम्यक् बौद्धिक कर्म करने की आदत है। मनुष्य का आनन्द बुद्धि के द्वारा वासनाओं और भावनाओं के नियमन पर आश्रित है। अतिशय त्याग (वैराग्यवाद) एवं अतिशय भोग (भोगवाद एवं सुखवाद) इनमें से कोई भी मानव जीवन के लिए श्रेयस्कर नहीं है। वस्तुतः अरस्तू त्यागवाद और भोगवाद के बीच का मध यममार्ग अपनाते हैं। अरस्तू के अनुसार सद्गुण का अर्थ वासनाओं का अत्यन्तिक दमन या उत्पीड़न नहीं है, बल्कि उनका बुद्धि के द्वारा युक्तिपूर्ण नियमन (अनुशासन) करना है। इससे सिद्ध होता है कि सद्गुण इन दो अतियों (वैराग्यवाद एवं भोगवाद) से बचने का मार्ग है। अरस्तू मानव दुर्बलताओं और उसके भावात्मक पक्षों के प्रति जागरूक है। इसी कारण उसने भावनाओं के दमन का परित्याग करके बुद्धि के द्वारा उसके नियमन पर बल दिया है। राग, द्वेष, भय, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, मोह (आसक्ति) आदि पर युक्तिपूर्वक बौद्धिक नियमन के द्वारा भावनाओं का उचित ढंग से उपयोग ही मध्यम मार्ग है।

पारिस्थितिकी दर्शन की दृष्टि से अरस्तू के मध्यम मार्ग के नैतिक विचार प्राकृतिक संसाधनों में बौद्धिक उपयोग को मान्यता प्रदान करते हुए प्रतीत होते हैं। प्रकृति के अत्यधिक दोहन के उपरान्त जो पारिस्थितिकी असन्तुलन पैदा हुआ है, वह लोभ एवं मोह का ही दुष्परिणाम है। अरस्तू लोभ एवं मोह तथा अन्य मानवीय दुर्बलताओं को बुद्धि द्वारा नियमित करने की बात करते हैं। यह विचार प्रकृति के प्रति शोषण एवं दोहन की प्रवृत्ति को रोकने का मार्ग प्रशस्त करता है।

: सन्दर्भ सूची :

1. The Shallow and the Deep, Long Range Ecology Movement- Arne Naess Steps to an Ecology of Mind, Ballantine, New York, 1972.
2. Bookchin Murray- The Ecology of Freedom, Cheshir Books, Palo, Alto, Calif, 1981
3. Iyer K.Gopal (ed)-Sustainable Development, Vikas Publishing House, P.L.T.D. 1996
4. Fritjof Capra- The way of life Archor Books, Doubleday, Newyork, 1996
5. इकालाजी एवं पर्यावरण –प्रो0 राधेश्याम अम्बष्ट एवं डॉ0 नवीन कुमार अम्बष्ट, स्टूडेण्ट्स फ्रेण्ड्स कम्पनी, वाराणसी
6 पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी– डॉ0 वी0के0 श्रीवास्तव और डॉ0 बी0पी0 राव, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 195
7. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण –प्रो0 पी0डी0 शर्मा, रस्तोगी पब्लिकेशन मेरठ
8. पारिस्थितिकी दर्शन– डॉ0 हृदयनारायण मिश्र, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999

Samaj Vigyan Shodh Patrika

Vol. 2 No. XXXX (2017-18)
ISSN 0973-7626
RNI: UPBIL/2005/16107
OCTOBER 2017 - MARCH 2018

गांधी और अंबेडकर की दृष्टि में राज्य और धर्म

राकेश कुमार
शोध छात्र
राजनीति विज्ञान विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़।

गांधी और अंबेडकर दोनों ही विचारकों का सम्पूर्ण जीवन दर्शन, चिंतन एवं कृतित्व का तुलनात्मक विवेचन, पूर्वाग्रहों से मुक्त एवं वैचारिक धरातल पर अपेक्षित है। इन दोनों ने धर्म, जाति अस्पृश्यता और सम्प्रदायों में विभक्त भारतीय समाज की विकृतियों एवं विडंबनाओं को उन्मूलित करते हुए नारी–समानता, शोषणमुक्त भारतीय समाज और साम्प्रदायिक सौहार्द के द्वारा भारतीयों के समग्र विकास का आह्वान किया था। गांधी और अंबेडकर दोनों ही ने स्वभावतः अन्याय को कभी स्वीकार नहीं किया। लेकिन उनके विरोध की भंगिमा में अंतर था।

गांधी जी ने धर्म को वृक्ष की तरह माना है। जिस तरह वृक्ष की अनेक शाखाएं होती हैं, ठीक उसी तरह धर्म मूलतः एक ही है, अनेक मत–मतान्तर होते हुए भी। गांधी की दृष्टि में धर्म मानवीय प्रकृति को परिवर्तित कर देता है, जो व्यक्ति को अपनी अन्तरात्मा के सत्य से जोड़ता है। यह मनुष्य की प्रकृति का एक स्थायी तत्व है। गांधी ने हिंदू धर्म के परिष्करण के लिए उसी पद्धित का सहारा लिया है, जो सनातन काल से चली आ रही थी।[1] गांधी की दृष्टि में धर्म व्यक्ति के जीवन और समाज का आधारभूत तत्व है। उन्होंने कहा है कि राजनीति में से यदि धर्म का तत्व निकाल दिया जाए, तो वह शून्य हो जाएगा। गांधी के दृष्टिकोण से राजनीति धर्म–विहीन नहीं हो सकती। इनके अनुसार धर्म से शून्य राजनीति नहीं हो सकती। राजनीति धर्म के अधीन है। धर्म–विहीन राजनीति एक तरह का मृत्युजाल है, क्योंकि उससे आत्मा का हनन होता है।[2] गांधी जी धर्म के प्रति पूर्वाग्रह से मुक्त थे। उनका अन्य धर्मों के प्रति उतना ही सम्मान है, जितना हिंदू धर्म के प्रति। उनके अनुसार धर्म सामाजिक सद्भाव को जोड़ता है। इसलिए गांधी ने अस्पृश्यता को हिंदू समाज के विकास में एक बाधा के रूप में स्वीकार किया है। गांधी जी की दृष्टि में व्यक्ति का एक अच्छा इंसान बनने में जो सहायक हो, वही धर्म है। अहिंसा हमेशा हमें यही शिक्षा देती है कि हम अन्य धर्मों के प्रति वैसा ही व्यवहार करें, जैसा कि अपने धर्म के प्रति।[3] गांधी जी का स्पष्ट मानना था कि व्यक्ति को अपने सामाजिक दायित्वों को पूर्ण करने की प्रेरणा प्रदान करने वाला धर्म ही होता है। गांधी का राजनीतिक चिंतन नैतिक शक्ति पर टिका हुआ है। गांधी जी के अनुसार सभी धर्म सत्य हैं। सभी धर्मों में कुछ कमियां हैं। और सभी धर्मों को उन्होंने उतना ही महत्व दिया है जितना हिंदू धर्म को। गांधी ने इस बात की तरफ भी संकेत किया है कि हमें अपने धर्म के दोषों का निवारण करने

हेतु निरंतर सचेत रहना चाहिए। सभी धर्मों के प्रति समान आदर का भाव होने से सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इससे दूसरे धर्मों को अपनाने योग्य विशेषताओं को अपने धर्म में समाविष्ट किया जा सकता है।[4]

गांधी जी का निष्पक्ष रूप से यह मानना था कि यदि व्यक्ति को धर्म का वास्तवित ज्ञान हो जाए, तो विभिन्न प्रकार के संप्रदायों के मध्य अवरोध समाप्त हो जाएगा। इसी तरह उन्होंने आगे भी कहा है कि सत्य से बढ़कर कोई भगवान नहीं है। सत्य की वास्तविक अनुभूति अहिंसा से ही होती है। जब व्यक्ति को सत्य की वास्तविक अनुभूति हो जाती है, तो वह व्यक्ति–व्यक्ति या जीव–जीव में अंतर या भेद नहीं मानता। ऐसा व्यक्ति, जो सत्य के मार्ग पर चलता है, वह जीवन के किसी भी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। गांधी जी ने स्वयं ही इसी आधार पर राजनीति में प्रवेश किया है। धर्म व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत मामला है। व्यक्ति को अपनी–अपनी समझ और सोच के अनुसार दूसरे लोगों के साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव करना चाहिए। इनके अनुसार स्वयं के धर्म को दूसरे धर्म से श्रेष्ठ मानना तथा दूसरे लोगों को अपने धर्म में परिवर्तित करने के स्वयं के प्रयासों की दुहाई देना घोर असहिष्णुता का परिणाम है। असहिष्णुता भी एक तरह की हिंसा ही है। गांधी जी ने ईश्वरीय निष्ठा पर बल दिया है, जिसको वे मानवता में भाई–चारे की भावना के रूप में देखते थे।[5] गांधी जी ने हिंसा की अव्यावहारिकता को बड़ी अचूक दृष्टि से पहचान लिया था। उनकी दृष्टि में जैसे हिंसा और प्रतिहिंसा का विषम चक्र चलता है, वैसे ही राज्य दमन के लिए प्रस्तुत हो जाता है। अतः क्रांतिकारी हिंसा अन्याय की व्यवस्था को समाप्त नहीं कर पाती और यह जनता को जाग्रत भी नहीं कर पाती है।[6]

गांधी जी ने राजनीति को महान धार्मिक और नैतिक लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपनाया। अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' के अंतर्गत उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों को पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त किया हैं। गांधी जी ने सार्वजनिक जीवन में सदैव सुविचारित चिंतन का समर्थन किया है। उन्होंने राजनीति और नैतिकता के बीच पुल का निर्माण करते हुए यह तर्क दिया कि राजनीति के क्षेत्र में साधन और साध्य दोनों ही समान रूप से पवित्र होने चाहिए। गांधी जी ने एक बार भारत सचिव मोंटेग से कहा था कि राजनीति में उनका प्रवेश उनके धार्मिक जीवन का ही एक हिस्सा है। इसको उन्होंने अपनी सामाजिक गतिविधियों के विस्तार के रूप में स्वीकार किया है। मानवीय कर्म से अलग कोई धर्म नहीं है। गांधी जी ने राज्य समर्पित धार्मिक शिक्षण संस्थान का जोरदार विरोध किया है। उनकी दृष्टि में यह कार्य धार्मिक संगठनों को करना चाहिए। गांधी की दृष्टि में 'धर्म' शब्द का राजकीय संरक्षण में प्रयोग मौलिक आचारशास्त्र नहीं अपितु सम्प्रदायवाद का प्रतीक है। धर्म व्यक्ति का स्वयं का मामला है। चाहे सभी समुदायों का क्यों न एक ही धर्म हो। गांधी राजकीय धर्म में विश्वास नहीं रखते थे।[7] गांधी जी ने एक आदर्श समाज की कल्पना की थी जो कि एक आदर्श राज्य में ही संभव था, और उसी को उन्होंने 'रामराज्य' की संज्ञा दी थी। उनके अनुसार धार्मिक दृष्टि से रामराज्य का अर्थ पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य है। गांधी जी कहते थे कि मेरा स्वराज्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक ही न रहे। मैं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्मराज्य के, सत्य और अहिंसा के शासन को स्थापित होता हुआ देखना चाहता हूं। गांधी जी के रामराज्य में भूमि और राज्य जनता का होगा। गांधी जी ने स्वराज्य के पांच अर्थ बताये हैं, जिनमें पांचवां 'आत्मानुशासन' है। लोकतंत्र की संभावना बिना आत्मानुशासन के संभव नहीं है। लोकतंत्र का अर्थ है– स्वशासन, यानी जनता अपना शासन स्वयं करे। इसलिए गांधी जी ने सेल्फ रूल अर्थात् आत्मानुशासन को सेल्फ गवर्नमेंट अर्थात् लोकतांत्रिक शासन के लिए आवश्यक माना। इसलिए शासक

और शासित दोनों के लिए ही आत्मानुशासन अपेक्षित है।[8]

जहां तक अंबेडकर के दृष्टिकोण का प्रश्न है, तो उन्होंने धर्म को जीवन के एक अपृथक् अंग के रूप में स्वीकार किया है। साथ ही धर्म को समाज के अस्तिव के लिए अनिवार्य भी माना है। अंबेडकर के अनुसार समाज और शिक्षा दोनों में ही धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, जिससे वैयक्तिक शुद्धता और सामाजिक सुदृढ़ता बढ़ती है। धर्म हमेशा हमें भलाई की ओर खींचता है। यही एक सच्चे धर्म की विशेषता है। उनकी दृष्टि में धर्म और राज्य का बहुत गहरा संबंध होता है, क्योंकि धर्म पूरे समाज को धारण करता है, जिससे कि राज्य का कार्य–संचालन व्यवस्थित ढंग से चलता रहता है। इसलिए राज्य से यह अपेक्षा होती है कि सभी धर्मों के साथ एक–सा बर्ताव करे और धर्म के प्रति न तो कठोर बने और न ही किसी धर्म विशेष का पक्षधर। अंबेडकर के अनुसार धर्म आत्मा की शुद्धि का मार्ग है। धर्म की नींव शुद्ध आचरण एवं सदाचार पर होनी चाहिए। उनका स्पष्ट मानना था कि नीतियों के आधार पर धर्म मनुष्य के पारस्परिक सौहार्द और सदाचार को कायम रखता है। कोई भी धर्म व्यक्ति–व्यक्ति में भेद–भाव नहीं करता। धर्म प्रेम और त्याग का ही दूसरा नाम है, जो धर्मग्रंथों से नहीं, बल्कि व्यवहार से मुखरित होता है। इसलिए अंबेडकर का स्पष्ट दृष्टिकोण था कि राज्य को सभी व्यक्तियों को विश्वास और धर्म की पूरी स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए। साथ ही धर्म के प्रचार–प्रसार और धर्म–परिवर्तन की भी स्वतंत्रता कानून और नैतिक मानदंडों के अनुसार होनी चाहिए।[9] वास्तव में सामाजिक समरसता में ही व्यक्तियों के सम्मान और गरिमा के बीज अंकुरित होते हैं, और यही अंबेडकर की सोच भी थी। वह एक ऐसी सामाजिक चेतना के विकास के प्रति जागरूक थे जो समान रूप से सभी व्यक्तियों को गरिमा प्रदान कर सके। उनकी दृष्टि में वर्ण–भेद मनुष्य की गरिमा के प्रतिकूल है।

अंबेडकर धार्मिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे। वह यह नहीं चाहते थे कि किसी भी व्यक्ति को भी अपना धर्म त्यागने या दूसरा धर्म ग्रहण करने अथवा किसी भी धार्मिक शिक्षण संस्थान में शिक्षा ग्रहण करने के लिए मजबूर किया जाए। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म को अपनाने अथवा त्यागने की पूर्ण स्वतंत्रता होना चाहिए। डा. अंबेडकर ने स्वयं भी इस अधिकार का प्रयोग किया था और हिंदू धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था। डा. अंबेडकर ने धर्म की जीवन में अनिवार्यता और स्वतंत्रता के साथ ही साथ लोगों से आग्रह भी किया कि लोग धर्मान्धता और कट्टरता का त्याग करें। अंबेडकर ने धर्म को मनुष्य के लिए स्वीकार किया है, न कि मनुष्य को धर्म के लिए। उनके दृष्टिकोण से धर्म हमें शुद्ध आचरण की शिक्षा देता है। ऐसे लोगों का मन पवित्र होता है और वे समाज की एकता तथा सामाजिक स्थिति को सुधारने में सहायक सिद्ध होते हैं। उनके अनुसार लोगों के मन की पवित्रता व शुद्ध आचरण राज्य की एकता–अखंडता के लिए आवश्यक हैं। उन्होंने कहा था कि भारत एक ऐसा राष्ट्र होगा जहां सभी जाति, समाज और समुदाय के लोग जाति, वंश, धर्म और पदस्थिति की दृष्टि से समान होंगे। सभी को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्वतंत्रता, समानता और गरिमा मिलनी चाहिए।[10] अंबेडकर के अनुसार धार्मिक संस्थाएं राज्य के उद्देश्यों की पूर्ति में बहुत हद तक सहायक सिद्ध हो सकती हैं। जहां तक धर्म से संबंधित संस्थाओं का प्रश्न है, यहां पर अंबेडकर ने स्पष्ट कहा है कि उनको राज्य की कानून व्यवस्था के अनुसार कार्य करना चाहिए। धार्मिक मामलों में किसी भी व्यक्ति से आर्थिक सहायता उसकी इच्छानुसार ही ली जा सकती है, उसे बाध्य नहीं किया जाएगा। धार्मिक मामलों में राज्य का हस्तक्षेप वर्जित है, जब तक कि कोई भी धार्मिक कार्य या नियम जनहित या राष्ट्र के नियमों के विपरीत न हो।[11]

उपर्युक्त सभी तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अंबेडकर की दृष्टि भारत में एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की थी। उन्होंने बहुत ही साफ कहा था कि सभी धर्म समान हैं और धर्मनिरपेक्ष राज्य का यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि हम लोगों की भावनाओं की ओर अपना ध्यान आकर्षित नहीं करेंगे। और एक बात यह भी है कि संसद किसी भी धर्म विशेष को जनता पर थोपने में सक्षम नहीं होगी। यह एक प्रकार की सीमा है, जिसे भारतीय संविधान स्वीकार करता है। अतः हमारे संविधान में सभी को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है।[12] इसके साथ ही जहां तक धर्म और राजनीति के संबंध की बात है, यहां पर अंबेडकर ने दोनों को ही उचित स्थान दिया है और दोनों ही महत्वपूर्ण भी हैं। लेकिन उनकी दृष्टि में धर्म का जीवन में उच्च स्थान है। धर्म किसी के भी सामाजिक उत्तराधिकार का अंग है। उसका जीवन तथा गरिमा और मान उसके साथ जुड़ा हुआ है। किसी के लिए भी अपने धर्म का परित्याग करना कोई सामान्य बात नहीं है। अंबेडकर की दृष्टि में धर्म विहीन राजनीति अधूरी है। अंबेडकर प्रत्येक सिद्धांत को तर्क की कसौटी पर कसते और गहन विचार करते थे। वह कहते थे कि धर्म विचलित मन को शांति प्रदान करता है। लाहौर के 'जाति–पाति तोड़क मंडल' के वार्षिक समारोह में अध्यक्षीय भाषण में अंबेडकर ने 'हिंदू वर्ण व्यवस्था' पर विचार रखे थे, जिसे उन्होंने 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' नाम से प्रकाशित करवाया था। डा. अंबेडकर ने अवर्ण और सवर्ण के अंतर को वर्ग–संघर्ष के रूप में माना था। उनका मानना था कि यदि एक ही धर्म में सभी को एक जैसा अधिकार नहीं मिलता, तो फिर वह धर्म नहीं रह जाता। डा. अंबेडकर ने न केवल राष्ट्र की सार्वभौमिकता एवं स्वतंत्रता को महत्व दिया, बल्कि वर्ग की सार्वभौमिकता और स्वतंत्रता को भी उसी तरह का स्थान दिया है। उनका हिंदू धर्म और गीता–दर्शन का विरोध इस बात का साक्ष्य है कि व्यक्ति ही अपनी स्थिति का नियामक है और वह स्वयं ही अपना मार्ग बनाता है। अंबेडकर एक राष्ट्रवादी चिंतक थे। कोई भी उनके इस विचार का विरोध नहीं कर सकता कि अस्पृश्यों के लिए हिंदुत्व द्वारा उन पर लादी गई घोर अपमानजनक स्थितियों का विरोध और उनसे मुक्ति ब्रिटिश शासन से राष्ट्र की राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की तुलना में भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य था। अंबेडकर सभी लोगों को चाहे वे किसी भी जाति, धर्म या वर्ग के हों, उनका सामाजिक और राष्ट्रीय उत्थान चाहते थे। उन्होंने कहा भी है कि जातिवाद ने अछूतों को असहाय बना दिया। इससे मानव की विशिष्टताएं गौण हो गईं।

गांधी और अंबेडकर के विचारों का सम्यक् तुलनात्मक मूल्यांकन आज की विचारणीय बौद्धिक समस्या हो चुकी है। हमें इस पर और भी गहनता के साथ विचार करना होगा। वैसे दोनों ही विचारकों ने कभी भी अपने विचारों में अन्याय, द्वेष, घृणा को स्थान नहीं दिया। दोनों का उद्देश्य लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना करना था।

: संदर्भ सूची :

1. यंग इंडिया, 12–05–1920.
2. एन्ड्रयूज, सी0 एफ0 'गांधी', हिज ओन स्टोरी, न्यूयार्क, मैकमिलन 1930, पृ0 338
3. संपूर्ण गांधी वाड्मय, भाग– 52, 1974, पृ0 360.
4. बोस, सेलेक्शन फ्रोम गांधी', नवजीवन मुद्रणालय, 1957, पृ0 225.
5. 'हिंद स्वराय' पृ0 63.
6. पारीख, भीखू, 'कोलोनियलिज्म, ट्रेडीसन एण्ड रिफार्म– एन एनालिसिस ऑफ गांधीज पोलिटिकल डिसकोर्स, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1989. पृ0 157.
7. हरिजन, 16.03.1947.
8. 'द मॉरल एण्ड पोलिटिकल राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी', खंड 1, राघवन, अय्यर

द्वारा संपादित, ऑक्सफोर्ड क्लेरेण्डन प्रेस 1986, हिंद स्वराज पृ0 234–35.
9. अंबेडकर, बी0 आर. 'स्टेट्स एण्ड मॉइनारिटिज', थैकर एण्ड कम्पनी, बम्बई, 1946, पृ0 स0 11–12.
10. भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, वर्ष द्वितीय, अंक प्रथम, द्वितीय (संयुक्तांक), जनवरी–दिसंबर 2010, पृ0 184.
11. अंबेडकर, बी0 आर0 स्टेट्स एण्ड माइनारिटिज, थैकर एण्ड कम्पनी, बम्बई, 1946, पृ0 12.
12. चलम, के0 एस0, रिलेवेन्स ऑफ अंबेडकरिज्म इन 'इंडिया', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1993, पृ0 67–68.